पुनर्जन्म :
एक ध्रुव सत्य

पुनर्जन्म : एक ध्रुव सत्य

*

लेखक :
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रकाशक
श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट
शांतिकुंज, हरिद्वार (उ० प्र०)

*

प्रथम बार] 2000 [मूल्य 11.00 रुपये

विषय-सूची

फ्रांसीसी बालक जान लुई कार्दियेक तीन माह का था तभी अंग्रेजी बोलने लगा। अमेरिका का दो वर्षीय बालक जेम्स सिदिम छह विदेशी भाषायें धड़ल्ले से बोल सकता था। इंग्लैंड के एक श्रमिक पुत्र जार्ज को चार वर्ष की आयु में कठिनतम गणित का प्रश्न हल करने में दो मिनट लगते थे। जो लोग पुनर्जन्म का अस्तित्व नहीं मानते, मनुष्य को एक चलता-फिरता पौधा भर मानते हैं, शरीर के साथ चेतना का उद्भव और मरण के साथ ही उसका अंत मानते हैं वे इन असमय उदय हुई प्रतिभाओं की विलक्षणता का कोई समाधान नहीं ढूँढ़ पायेंगे। वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षी सभी अपने प्रगति क्रम से बढ़ते हैं, उनकी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विशेषताएँ समयानुसार उत्पन्न होती हैं। फिर मनुष्य के असमय ही इतना प्रतिभा संपन्न होने का और कोई कारण नहीं रह जाता कि उसने पूर्व जन्म में उन विशेषताओं का संचय किया हो और वे इस जन्म में जीव चेतना के साथ ही जुड़ी चली आई हों।

युगांतर चेतना प्रकाशन

शांतिकुंज, हरिद्वार (उ० प्र०)

अध्याय ५

मरणोत्तर जीवन और उसकी सच्चाई

पालटेराजेस्ट फेनामेना, आडिटरी हेलसिनेशन, फिजीकल ट्रांसपोजीशन, व्हिजिनरी एक्सपीरियेन्स, स्प्रिटिपाजेशन प्रभृति वैज्ञानिक कसौटियों पर कसे गये घटनाक्रम एवं अनुभवों द्वारा आत्मा और शरीर की भिन्नता के अधिकाधिक प्रमाण मिलते जा रहे हैं। शरीर के मरने पर भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है और जीव बिना शरीर के होने पर भी दूसरों के सम्मुख अपनी उपस्थिति प्रकट कर सकता है, इस तथ्य की पुष्टि में इतने ठोस प्रमाण विद्यमान हैं कि उन्हें झुठलाया नहीं जा सकता। विज्ञान के क्षेत्र की वह मान्यता अब निरस्त हो चली है कि शरीर ही मन है और उन दोनों का अंत एक साथ हो जाता है।

मरने के बाद प्राणी की चेतना का क्या हश्र होता है, इसका निष्कर्ष निकालने के लिए अमेरिकी विज्ञानवेत्ताओं ने एक विशेष प्रकार का चेंबर बनाया। भीतरी हवा पूरी तरह निकाल दी गई और एक रासायनिक कुहरा इस प्रकार का पैदा कर दिया गया, जिससे अंदर की अणु हलचलों का फोटो विशेष रूप से बनाये गये कैमरे से लिये जा सके।

इस चेंबर से संबद्ध एक छोटी पेटी में चूहा रखा गया और उसे बिजली से मारा गया। मरते ही उपरोक्त चेंबर में जो फोटो लिये गये, उसमें अंतरिक्ष में उड़ते हुए आणविक चूहे की तस्वीर आई। इसी प्रयोग शृंखला में दूसरे मेंढक, केकड़ा जैसे जीव मारे गये तो मरणोपरांत उसी आकृति के अणु बादल में उड़ते देखे गये। यह सूक्ष्म शरीर हर प्राणधारी का होता है और मरने के उपरांत भी वायुभूत होकर बना रहता है।

टैलीपैथी, प्रीकॉग्नीशन, क्लेयरवायेन्स, ऑकल्ट साइंस, मेटाफिजिक्स प्रभृत वैज्ञानिक धाराओं पर चल रहे प्रयोगों एवं अन्वेषणों से अब यह तथ्य अधिकाधिक स्पष्ट होता चला जा रहा है कि शरीर की सत्ता तक ही मानवी-सत्ता सीमित नहीं। वह उससे अधिक और अतिरिक्त है तथा मरने के उपरांत भी आत्मा का अस्तित्व किसी न किसी रूप में बना रहता है। यह अस्तित्व किस रूप में रहता है—अभी उसका स्वरूप वैज्ञानिकों के बीच निर्धारण किया जाना शेष है। इलेक्ट्रोनिक (विद्युतीय) एवं मैगनेटिक (चुंबकीय) सत्ता के रूप में अभी वैज्ञानिक उसका अस्तित्व मानते हैं और ऐसी प्रकाश-ज्योति बताते हैं, जो आँखों से नहीं देखी जा सकती। डॉ० रह्येन ने इस संदर्भ में जो शोध कार्य किया है, उससे आत्मा के अस्तित्व की इसी रूप में सिद्धि होती है। उन्होंने ऐसी दर्जनों घटनाओं का उल्लेख किया है, जिसमें किन्हीं अदृश्य आत्माओं द्वारा जीवित मनुष्यों को ऐसे परामर्श, निर्देश एवं सहयोग दिये गये—जो अक्षरशः सच निकले और उनके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए।

सर विलियम वेनेट की 'डैथबैंड विजन्स' पुस्तक में ऐसी ढेरों घटनाओं का वर्णन है—जिसमें मृत्युकाल की पूर्व सूचना से लेकर घातक खतरों से सावधान रहने की पूर्व सूचनाएँ समय से पहले मिली थीं और वे यथा समय सही होकर रहीं। इसी प्रकार के अपने निष्कर्षों का विवरण प्रो० रिचेट ने भी प्रकाशित कराया है।

यह बात तो वैज्ञानिक भी मानते हैं कि मनुष्य का शरीर कोशिकाओं से बना है। यह कोशिकायें प्रोटोप्लाज्म नामक जीवित अणुओं से बनी होती हैं। यदि प्रोटोप्लाज्म को भी खंडित किया जाए, जो सजीव पदार्थ का अंतिम टुकड़ा होती है और जिसमें चेतना का स्पंदन होता है, तो उसके भी साइटोप्लाज्म और न्यूक्लिअस नामक दो खंड हो जाते हैं। साइटोप्लाज्म कोशिका से काट देने पर मृत हो जाता है पर न्यूक्लिअस अर्थात नाभिक अपनी सत्ता को पुनः विकसित कर लेने की क्षमता रखता है। इस

नाभिक के बारे में विज्ञान अभी कोई अंतिम निर्णय नहीं कर सका है। यहाँ से भारतीय तत्त्व-ज्ञान प्रारम्भ हो जाता है।

शास्त्र कहता है "अणोरणीयान् महतोमहीयान" अर्थात यह आत्मा छोटे से भी छोटा और इतना विराट है कि उसमें समग्र सृष्टि नप जाती है। अणु के अंदर समाविष्ट आत्मा की सत्यता का प्रमाण यही है कि जब वह पुनः किसी प्राणधारी के दृश्य रूप में विकसित होती है, तो अपने सूक्ष्म (नाभिक शरीर) के ज्ञान की दिशा में बढ़ने लगता है। इसी बात को गीता में भगवान कृष्ण ने इस प्रकार कहा है—

"पार्थ नैवेह नामुत्र, विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद दुर्गति तात गच्छति।।
प्राप्त पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।
अथवा योगिना मेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोक जन्म यदीदृशम्।।
तत्र तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।।
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते।।

(६ ।४०, ४१, ४२, ४३, ४४)

अर्थात (अर्जुन की इस शंका का कि यदि इसी जन्म में योग-सिद्धि नहीं हुई और वासना के किसी उभार से साधक पथभ्रष्ट हो गया, तो वह न तो भोग ही भोग पायेगा, न योगी ही हो पायेगा, उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा) हे अर्जुन ! उस योग भ्रष्ट साधक के विनष्ट होने का प्रश्न ही नहीं। कल्याण के मार्ग पर पैर बढ़ाने वाले की दुर्गति का प्रश्न ही नहीं। (उसने जितनी दूर तक यात्रा कर ली है, उसके आगे की यात्रा अगले जन्म में करने की प्रेरणा संस्कारों द्वारा उसे प्राप्त होगी।

ऐसा योगभ्रष्ट पवित्र एवं श्रीसंपन्न घर में जन्म लेता है या फिर योगियों के ही कुल में वह बुद्धिमान व्यक्ति उत्पन्न होता है। नये जन्म में वह पूर्वदेह के संचित-संस्कारों से बौद्धिक-भावनात्मक प्रेरणा पाकर सिद्धि के लिए पुनः प्रयास करता है। पहले किये हुए अभ्यास के कारण वह अवश-सा उसी मार्ग में बढ़ने के लिए विवश होता है।

इस प्रकार जीवन का प्रवाह अविच्छिन्न गति से आगे बढ़ता है। नाश सिर्फ शरीर का होता है। उस शरीर के माध्यम से आत्मा जिन अनुभवों, गुणों, विभूतियों तथा जानकारियों को संचित करती है, वे सूक्ष्म तथा कारण शरीर के साथ संस्कार रूप में जुड़कर आगे के जन्म में भी काम आते हैं तथा व्यक्ति के जीवन को प्रभावित-निर्देशित करते हैं।

इसीलिए तो ऋषियों ने कहा है—"वाणी को जानने से कोई लाभ नहीं, वाणी को प्रेरित करने वाली आत्मा को जानना चाहिए। गंध को जानकर क्या बनता है, यदि गंध ग्रहण करने वाली आत्मा को नहीं जाना जाता। रूप के ज्ञाता आत्मा को न जानकर रूप को जानने का प्रयत्न व्यर्थ है। जो शब्द सुनता है, उसे जानना चाहिए शब्द को नहीं, अन्य रस के ज्ञान की कामना भी व्यर्थ है। कर्म, सुख-दुःख, काम सुख, पुत्रोत्पत्ति और गमनागमन को जानने से कोई लाभ नहीं, यदि इनके ज्ञाता और साक्षी आत्मा को न जाना जाय। हे प्रतर्दन ! मन को जानने की जिज्ञासा भी व्यर्थ है, मननशील आत्मा को जानना चाहिए।"

यह कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् के तृतीय अध्याय में भगवान इंद्र ने प्रतर्दन से कहा—**"न वाचं विजिज्ञासीतवक्तारं विद्यात् न गंध विजिज्ञासीत घ्रातारं विद्यात् .... न मनो विजिज्ञासीत मन्तारं विद्यात् ।"**

उपरोक्त संदर्भ में जितना अधिक चिंतन करते हैं, उतने ही महत्त्वपूर्ण रहस्य प्रकट होते हैं। ऐसा लगता है कि उनको जाने बिना मनुष्य का यथार्थ कल्याण संभव नहीं। शास्त्रकार का यह

कथन कि सुंदर स्वर संगीत, सुगंधित वस्तुएँ, सुंदर भोजन, रति, सुख-दु:ख, साधन शृंगार यह सब भौतिक आवरण हैं। इनके बीच घिरी हुई, साक्षी आत्मा को जब तक नहीं जान लिया जाता, यह सारा ज्ञान निरर्थक है। यथार्थ सुख-शांति और बंधन मुक्ति दिलाने वाली आत्मा है, उसको जाने बिना मनुष्य शरीर और पशु शरीर में कोई अंतर नहीं रह जाता।

प्रमाण, तर्क और विज्ञान-बुद्धि—इस युग का प्राणी कहता है, आत्मा का कोई अस्तित्व संभव ही नहीं, तो जाना किसे जाये ? आत्मा नाम की कोई वस्तु इस संसार में है ही नहीं, इस मूढ़ मान्यता के कारण ही भौतिक आकर्षणों का मोह आज संसार में भयंकर रीति से बढ़ता और प्राणिमात्र को संकट, संघर्ष, अशांति, उद्वेग, निराशा, कलह, वैमनस्य, युद्ध, अंतर्द्वंद्व से जकड़ता जा रहा है।

इसी उपनिषद् के अगले पन्नों में आत्मा के स्वरूप और उसकी प्राप्ति के उपायों का विवेचन किया गया है, पर उसे कहने की अपेक्षा आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करना सर्वप्रथम आवश्यक है। प्रमाण, तर्क और वैज्ञानिक तथ्यों की कमी नहीं, यदि बुद्धिजीवी लोग श्रद्धा परायण आत्मा को जानने के इच्छुक नहीं तो प्रमाण परायण आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करने में तो झिझक और हिचक न होनी चाहिए।

वैज्ञानिक धारणा के अनुसार कोई भी व्यक्ति जैव-द्रव के सक्रिय परमाणुओं का समूह होता है, जो सारभूत रूप में करोड़ों वर्षों के जीव विकास-क्रम की पुष्टि करता है। ये सक्रिय परमाणु सारे शरीर में उसकी अनुभूतियों में और मस्तिष्क में केंद्रित होते हैं, इतना जान लेने के बाद विज्ञान अपने आप से प्रश्न करता है कि इन परमाणुओं की संरचना, गति और अनुभूतियों को रचने वाला, प्रेरणा देने और ग्रहण करने वाला कौन है ? उसका उत्तर होता है—मौन। भारतीय-दर्शन वहीं से अध्यात्म का आविर्भाव मानता है और कहता है कि वह आत्मा है, आत्मा। उसे ही जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

मन ही सब कुछ नहीं

डॉ० टिमोदी लियरी ने मन को ही सब कुछ माना और अध्यात्म की सत्ता वहीं तक स्वीकार की। मन एक रासायनिक तत्त्व है। अन्न के स्वभाव और गुण के अनुरूप उसका आविर्भाव होता है। मनश्चेतना के विस्तार तथा उसकी अभिव्यक्ति के लिए अनेक रासायनिक द्रव्यों का विकास हुआ है। भारतीय-तंत्र और तिब्बती तांत्रिक साधनाओं में भी रासायनिक तत्त्वों के आधार पर मनश्चेतना के प्रसार और उसके द्वारा विलक्षण अनुभूतियों और दूरवर्ती ज्ञान को प्राप्त कर लिया जाता है। एलन गिंसवर्ग ने भी उसी की पुष्टि की है और उनका विश्वास है कि जीव-चेतना का अंत मन है, उसके आगे न कोई सूक्ष्म सत्ता है और न कोई अतिमानस ज्ञान। पर अब पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी इन तांत्रिक साधनाओं के आधार पर ही अतींद्रिय और मनश्चेतना से परे किसी ऐसे तत्त्व का अस्तित्व स्वीकार करना प्रारंभ कर दिया है, जो सर्वद्रष्टा, शाश्वत, मुक्त और स्वेच्छा से भ्रमण और स्वरूप ग्रहण करने वाला है, जो साक्षी चेतन और अपनी इच्छा से विकसित होने वाला है। इस विश्वास की पुष्टि और शोध के लिए हो 'लीग फॉर स्पिरिचुअल डिस्कवरी' की स्थापना हुई है। यह संगठन अनेक घटनाओं के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है कि मनश्चेतना से परे भी कोई चेतना तत्त्व इस सृष्टि में विद्यमान है, शरीरधारियों का केंद्र और मूल भी वही है।

हमारे यहाँ यह कहा जाता है कि कथा-कीर्तन, संगीत, भजन, चित्रकला, जप-तप, ध्यान-धारणा के आधार पर मन को एकाग्र करके, कैसे आत्म-तत्त्व की शोध में नियोजित किया जा सकता है। निग्रहीत मन की सत्ता इतनी सूक्ष्म और गतिशील हो जाती है कि उसे कहीं भी दौड़ाया जा सकता है और दूरस्थ स्थान को भी देखा और सुना जा सकता है। मन को जब आत्मा में केंद्रित कर देते हैं तो समाधि सुख मिलता है।

दूसरे देशों में समाधि-सुख की कल्पना तो की गई है, पर उसका कारण और कर्त्ता आत्मा को न मानकर मन को माना जाता है। मन यद्यपि अत्यंत सूक्ष्म सत्ता है, पर वह अन्न की गैसीय स्थिति है, अन्न से रस, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि, वीर्य आदि सप्त धातुयें बनती हैं। वीर्य इनमें से स्थूल-तत्त्व की अंतिम अवस्था है, वहाँ से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि अंतःकरण चतुष्टय बनते हैं, इनको ज्ञान और मोक्ष का आधार माना गया है अर्थात यह मन के ऊपर अवलंबित है कि वह सांसारिक पदार्थों में घिरा रहे अथवा सूक्ष्म सत्ता को प्राप्त कर समाधि सुख प्राप्त करे। मन तो भी एक रासायनिक तत्त्व ही है, आत्मा नहीं।

अमेरिका के डॉक्टर टिमोदीलियरी ने मन को अंतिम स्थिति माना है और उसी के विस्तार को समाधि-सुख। नशा और कुछ औषधियाँ मनश्चेतना का विस्तार कर देती हैं, जिससे अनेक गुना अधिक शक्ति अनुभव होती है, उस स्थिति में कामजन्य-सुख बहुत बढ़ जाता है। सामान्य स्थिति में भी अपने में शक्ति अनुभव होती है और बड़ा आनंद आने लगता है। वह दरअसल चेतना को निम्नस्तर से उठाकर जगत के मूल-भूत तत्त्वों के साथ एकाकार कर देने की क्षणिक स्थिति मात्र है। पर वह उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना आध्यात्मिक साधन। उससे अतिमानस तत्त्व की सत्यता अनुभव की जा सकती है।

इस दिशा में जैकी कैसन के मनो-विस्तारक प्रयोगों का बड़ा महत्त्व है। वे प्रकाश की किरणों को विविध आकृतियों में संयोजित करती हैं और पानी के माध्यम से उन आकृतियों के छाया-चित्र किसी पर्दे में प्रक्षेपित करती हैं। उन चित्रों को ध्यानपूर्वक देखने से मनुष्य सम्मोहन की स्थिति में पहुँच जाता है और उसे विचित्र प्रकार की अनुभूतियाँ होने लगती हैं, इससे भी आत्मा का अस्तित्व प्रमाणित होता है। यह अनुभूति यद्यपि क्षणिक होती है और पाश्चात्य वैज्ञानिक उसे सुख की संज्ञा दे देते हैं, पर यह वस्तुतः

उस आत्मा के साथ एकाकार का क्षणिक आवेग है, समाधि सुख तो आत्मा में पूर्ण विलय के साथ ही मिलता है।

सोमरस के संबंध में भारतवर्ष में अनेक तरह की मान्यताएँ प्रचलित हैं, उसका अलडुअस हक्सले ने बहुत गुणगान किया है। उत्तर योरोप में उसी तरह का एक पेय फ्लाई एगेरिक नामक कुकुरमुत्ते से तैयार किया जाता है। फिजी द्वीप-समूह के लोग कावा नामक पेय पीते हैं। एंडियन तराई (अमरीका) के लोग आयाहुस्का नामक पेय पीते हैं, इससे उन्हें दिवास्वप्न जैसी अनुभूतियाँ होने लगती हैं। कई बार इस अवस्था में भविष्य की और मृत आत्माओं की विचित्र और सत्य बात फलित होती हैं। मन उस अवस्था में किसी बड़े तत्त्व के साथ एकाकार होकर ही वह क्षणिक अनुभूतियाँ प्राप्त करता है। वह तत्त्व यदि है तो उसे आत्मा कहेंगे। भले ही उसका स्वरूप समझने में विज्ञान जगत को कुछ समय लगे।

शाश्वत सुख हमारे जीवन का लक्ष्य है और आत्मा उसका केंद्र। इंद्रियाँ उसके विषय मात्र हैं, इन विषयों को लक्ष्य न बनाकर आत्मा को जानने का प्रयत्न करना चाहिए, यही बात उपनिषदकार ने कही है।

लोकोत्तर जीवन की विज्ञान द्वारा स्वीकृति

आत्मा की चैतन्य-सत्ता के प्रतिपादन के साथ ही यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि मृत्यु के उपरांत आत्मा की गति क्या, कैसी और कहाँ होती है ? यही बात कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् में इस प्रकार कही है।

महर्षि उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को महर्षि चित्र का यज्ञ संपन्न कराने को भेजा। चित्र स्वयं महान विद्वान थे, उन्होंने श्वेतकेतु से जीवात्मा की गति संबंधी कुछ प्रश्न किये, किंतु श्वेतकेतु से उन प्रश्नों का उत्तर न बन पड़ा। उन्होंने कहा—"हमारे पिताजी अध्यात्म विद्या के पंडित हैं, उनसे पूछकर उत्तर दूँगा।"

श्वेतकेतु पिता उद्दालक के पास आये। सारी बात कह सुनाई। महर्षि चित्र ने जो प्रश्न किये थे, वे भी सुनाये किंतु उद्दालक स्वयं भी उन बातों को नहीं जानते थे, इसलिये उन्होंने श्वेतकेतु से कहा—"तात्, तुम स्वयं चित्र के पास जाकर इन प्रश्नों का समाधान करो। प्रतिष्ठा का अभिमान नहीं करना चाहिए। विद्या या ज्ञान छोटे बालक से भी सीखना चाहिए।"

श्वेतकेतु को अपने पिता की बात बहुत अच्छी लगी। वे चित्र के पास निरहंकार भाव से गये और विनीत भाव से पूछा—"महर्षि हमारे पिताजी भी उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकते। उन्होंने आपसे ही वह विद्या जानने को भेजा है।" तब चित्र ने विनीत श्रद्धा से प्रसन्न होकर जीवात्मा की परलोक गति का विस्तृत अध्ययन कराया। कोषीतकिं ब्राह्मणोपनिषद् में महर्षि चित्र ने जीव की गति और लोकोत्तर जीवन की व्याख्या करते हुए लिखा है—

"तनेत देवयजनं पन्थानमासाद्याग्नि लोक भागच्छति। स वायुलोकं स वरुणलोकं स आदित्यलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापति लोकं स ब्रह्मलोकम् तं ब्रह्मा हाभिधावत् मम यशसा विरजां पालयन्नदीप्राप न वाऽयजिगीय तीति।"

—कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् ।३,

अर्थात—जो परमेश्वर की उपासना करता है, वह देवयान मार्ग द्वारा प्रथम अग्निलोक को प्राप्त होता है। फिर वायु-लोक में पहुँचता है, वहाँ से सूर्यलोक में गमन करता, फिर वरुण-लोक में जाकर इंद्र-लोक में पहुँचता है। इंद्र लोक से प्रजापति-लोक, प्रजापति-लोक से ब्रह्म-लोक को प्राप्त होता है। इस ब्रह्म-लोक में प्रविष्ट होने वाले मार्ग पर 'आर' नामक एक वृहद् जलाशय है। उससे पार होने पर काम-क्रोध आदि की उत्पत्ति द्वारा ब्रह्म-लोक प्राप्ति की साधना और यज्ञादि पुण्य कर्मों को नष्ट करने वाले 'येष्टिह' नामक मुहूर्ताभिमानी देवता निवास करते हैं, उनसे छुटकारा मिलने पर विरजा नाम की नदी मिलती है, जिसके दर्शन-मात्र से

वृद्धावस्था नष्ट हो जाती है। इससे आगे इला नाम की पृथिवी का स्वरूप इह्य नामक वृक्ष है, उससे आगे एक नगर है, जिसमें अनेकों देवता निवास करते हैं। उसमें बाग-बगीचे, नदी-सरोवर, बावड़ी, कुएँ आदि सब कुछ हैं...... ।

इन आख्यानों को आज का प्रबुद्ध समाज मानने को तैयार नहीं होता। उन्हें काल्पनिक होने की बात कही जाती है। संभव है उपरोक्त कथन में जो नाम प्रयुक्त हुए हों, वे काल्पनिक हों, पर आज का विज्ञान यह तो स्पष्ट मानने को तैयार हो गया कि पृथ्वी के अन्यत्र लोक भी हैं, वहाँ भी नदियाँ, पर्वत, खार-खड्डे, प्रकाश, जल, वायु, ऊष्मा आदि हैं। चंद्रमा के एक पर्वत का नाम शैलशिपर रखा गया है। इस तरह के अनेक काल्पनिक नाम रखे गये हैं। मंगल ग्रह के चित्र में कुछ उभरती हुई रेखायें दिखाई दी हैं, जिनके नहर या सड़क होने का अनुमान लगाया जाता है। यदि इस तरह का विज्ञान अन्य लोकों में संभव है, तो वहाँ भी सभ्य और सांस्कृतिक जीवन हो सकता है। इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं रह जाती।

अब तक जो वैज्ञानिक खोजें हुई हैं, उनमें बताया गया है कि हमारी आकाश गंगा में लगभग १00000000000 नक्षत्र हैं। ग्रह परिवारों से युक्त नक्षत्रों की संख्या १0000000000 है। जीवों के निवास योग्य ५000000000 नक्षत्र हैं, जिनमें जीव हैं उन ग्रहों की संख्या २५00000000 बताई जाती है। ऐसे ग्रह जिनके प्राणी काफी समुन्नत हो चुके हैं, उनकी संख्या ५00000000 है। जिन ग्रहों के जीव संकेत भेजना चाहते हैं और जिनके संकेत भेज रहे हैं, उनकी संख्या क्रमशः १0,0000000 और १0,00000 है। यह आँकड़े ब्रिटेन के प्रसिद्ध अंतरिक्ष शास्त्री 'डेस्मॉड विंग हेली' द्वारा विस्तृत अध्ययन खोज और अनुमान के आधार पर प्रस्तुत किये गये हैं।

कुछ ग्रह ऐसे हैं, जहाँ जल व ऑक्सीजन की मात्रा इतनी कम है कि वहाँ जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। **चंद्रमा**

का धरातल दिन में इतना गर्म रहता है कि धातुएँ पिघल जायें, इसलिये किसी मानव जैसे देहधारी का वहाँ होना नितांत असम्भव है। इसी तरह रात में चंद्रमा तक तापमान शून्य से भी बहुत नीचे गिर जाता है, इसलिये भी प्राणियों का अस्तित्व संभव नहीं दिखाई देता। चंद्रमा का एक दिन पृथ्वी के सात दिन के बराबर होता है, इतने लंबे समय तक सूर्य की 'अल्ट्रावायलेट' किरणों को सहन करना मानव शरीर के वश की बात नहीं। शुक्र ग्रह की स्थिति भी ऐसी ही है कि वहाँ जीवन की संभावना नहीं हो सकती।

किंतु कुछ ऐसे कारण और परिस्थितियाँ भी हैं, जिनसे सौर-मंडल के कुछ ग्रहों में जीवन होने का स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है। यह हम सब जानते हैं कि पदार्थ समान परिस्थिति के अणुओं से मिलकर बनता है। अणु ही शरीर रचना के आधार होते हैं। वैज्ञानिकों को इन बातों के प्रमाण मिले हैं कि जिस तरह के अणु पृथ्वी में पाये जाते हैं, उस तरह के अणु लाखों मील दूर के ग्रहों में भी विद्यमान हैं। वह शरीर रचना की स्थिति में होते हैं। अलबत्ता चेतनता उन ग्रहों में पहुँचकर उन अणुओं से बने शरीर के कारण ज्ञान, आत्म-सुख, संतोष, शांति आदि की परिस्थितियाँ पृथक् अनुभव कर सकती है। उनके बोलने और समझने के माध्यम अलग हो सकते हैं। शरीर की आकृति भी भिन्न हो सकती है, चूँकि प्राकृतिक नियम और रासायनिक तत्त्व ब्रह्मांड के सभी ग्रहों पर अपरिवर्तित रहते हैं, इसलिये वैज्ञानिकों को यह भी आशा है कि रासायनिक तत्त्वों के मिश्रण से जैसी चेतनता तथा प्रतिक्रिया पृथ्वी पर अनुभव होती है, वैसी कल्पना से परे दूरियों पर बसे अगणित ग्रहों पर भी अवश्य होती होगी।

इटली के ब्रूनो कहते थे—"असंख्य ग्रहों पर जीवन का अस्तित्व है। विश्व में जीवन की अभिव्यक्ति असंख्य और अलग-अलग रूपों में हैं। किसी ग्रह के निवासियों के हाथ पाँच-सात

होते होंगे, किसी के पाँव नहीं होते होंगे। कहीं दाँतों की आवश्यकता न होती होगी, कहीं पेट की। आकृतियाँ कहीं-कहीं कल्पनातीत भी हो सकती हैं। पृथ्वी अनंत विश्व में एक छोटे से कण के बराबर हैं। यह सोचना हास्यास्पद है कि केवल पृथ्वी पर ही बुद्धि वाले जीव रहते हैं।"

बाद में इंग्लैंड के न्यूटन, जर्मनी के कैप्लेर और लैब्नीत्सा, गैलीलियो, रूस के लोमोनासोव, फ्रान्स के देकार्त और पास्कल आदि ने भी स्वीकार किया कि ब्रह्मांड के ग्रहों में जीवन है। वे वेदों के इस विश्वास को भी मानने को तैयार थे कि पृथ्वी से दूर आकाशीय पिंडों में जीव की कर्मगति के अनुसार पुनर्जन्म होता है। यह जन्म कुछ समय के बाद भी हो सकते हैं और लंबे समय के भी। मनुष्य अपने सारे जीवन के बाद मृत्यु के क्षणों तक जैसी मानसिक स्थिति विकसित कर लेता है, उसका प्राण-शरीर और कारण-शरीर भी उसी के अनुरूप परिवर्तित हो जाता है। फिर जहाँ उस शरीर के अनुरूप परिस्थितियाँ होती हैं, वह उसी आकाश पिंड की ओर खिंच जाता है और वहाँ सुख-दुःख की वैसी ही अनुभूति करता है, जिस तरह कि इस भौतिक जगत में।

संपूर्ण विश्व ब्रह्मांड मनुष्य शरीर की तरह ही एक स्वतंत्र पिंड जैसा है, उसमें जीवों की गति उसी प्रकार संभव है, जिस तरह शरीर में अन्न-कणों की गति होती है।

अब इस मान्यता का खंडन करना संभव हो गया है कि अन्य ग्रहों की तापमान की स्थिति में प्राणी का रहना संभव नहीं। यह ठीक है कि शरीर का जो स्वरूप (हाथ-पाँव, नाक-मुँह, पेट आदि) पृथ्वी पर है, वह अन्यत्र न हों। वातावरण के तापमान और दबाव की स्थिति में भी जीव-प्राणी अपने आपको वातावरण के अनुकूल बना लेते हैं। इस दृष्टि से बृहस्पति, शनि, यूरेनस (उरण), नेप्च्यून (वरुण), प्लूटो (यम) आदि ग्रहों को देखें, तो जान पड़ता है

कि वहाँ जीवन नहीं है, वहाँ मीथेन गैस की अधिकता है। बृहस्पति ग्रह पर घने बादल छाये रहते हैं।

बादलों का विश्लेषण करने पर वैज्ञानिकों ने पाया, उनमें हाइड्रोजन का सम्मिश्रण रहता है। अमोनिया और मीथेन गैसें भी अधिकता से पाई जाती हैं। बादलों में सोडियम धातु के कण भी पाये जाते हैं, इससे वृहस्पति के बादल चमकते हैं। इन परिस्थितियों में यद्यपि जीवाणुओं की शक्ति नष्ट हो जाती है, पर जिस तरह पृथ्वी पर ही विभिन्न तापमान और जल-ऊष्मा की विभिन्न स्थितियों में मछली, साँप, मगर, कीड़े-मकोड़े, वनस्पति, फल-पौधे, स्तनधारी गोलकृमि और टारडीग्राडों जैसे जीव पाये जाते हैं, तो अन्य ग्रहों पर इस तरह की स्थिति संभाव्य है और इस तरह सूर्य, चंद्रमा आदि पर भी जीवन संभव हो सकता है, भले ही शरीर की आकृति और आकार कुछ और ही क्यों न हो।

इस तथ्य की पुष्टि में अमरीकी वैज्ञानिक मिलर का प्रयोग प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। मिलर ने एक विशेष प्रकार के उपकरण में अमोनिया, मीथेन, पानी और हाइड्रोजन भरकर उसमें विद्युत धारा गुजारी। फिर उस पात्र को सुरक्षित रख दिया गया। लगभग १० दिन बाद उन्होंने पाया कि कई विचित्र जीव-अणु उसमें उपज पड़े हैं। इससे यह सिद्ध होता है, वातावरण की विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्राणियों का जीवन होना संभव है। यह भी संभव है कि उनमें से कुछ इतने शक्तिशाली हों कि दूर ग्रहों पर बैठे हुए अन्य ग्रहों—जिनमें पृथ्वी भी सम्मिलित है—के लोगों पर शासन कर सकते हैं। उन्हें दंड दे सकते हों अथवा उन्हें अच्छी और उच्च स्थिति प्रदान कर सकते हैं; लोकोत्तर निवासी पृथ्वी के लोगों को अदृश्य प्रेरणायें और सहायतायें भी दे सकते हैं।

इस दृष्टि से यदि हम अपने आर्ष ग्रंथों में दिये गये संदर्भों और अनुसंधानों को कसौटी पर उतारें, तो यह मानना पड़ेगा कि वे सत्य हैं, आधारभूत हैं। अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार जीवात्मा को

अन्य लोकों में जाना पड़ता होगा और वहाँ वह अनुभूतियाँ होती होंगी, जो कोषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् में दी गई हैं।

इन वैज्ञानिक तथ्यों को देखते हुए यदि कोई कहे कि मनुष्य को शुभ और सत्कर्म करना चाहिए, ताकि वह ऊर्ध्व लोकों का आनंद ले सके तो उसे हास्य या उपेक्षा की दृष्टि से नहीं, वैज्ञानिक दृष्टि से तथ्यपूर्ण अनुभव करना चाहिए। शास्त्रकार का यह वचन सबके लिए शिरोधार्य होना चाहिए—

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
तथात्मानं समाधत्स्व भ्रश्यसेन पुनर्यथा।।

यह मनुष्य शरीर पाना बड़ा दुर्लभ है। बड़े पुण्यों से यह प्राप्त किया जाता है। यह स्वर्ग की प्राप्ति का साधन है, इसलिये इस मनुष्य शरीर को प्राप्ति करके इसे शुभ कर्मों में लगाना चाहिए, जिससे अवनति को प्राप्त न हो। पथ-भ्रष्ट न हो।

जीवात्मा की अमरता को स्वीकार कर हमें भी ऊर्ध्व लोकों (स्वर्ग) और ब्रह्मानंद की प्राप्ति के प्रयत्न करने चाहिए। सत्कर्मों द्वारा आत्मा को विकसित करना उसका सर्वोत्तम और सरल उपाय है। विकास को इसी जीवन तक सीमित समझकर तथा उसके उपरांत विकास के अधूरे प्रयत्न व्यर्थ ही रह जाने की आशंका कर अर्जुन की तरह अंतर्द्वंद्व में पड़ने की आवश्यकता नहीं। मृत्यु जीवन का अंत नहीं और सत्प्रयास कभी भी निष्फल नहीं रहते। अतः मरणोत्तर जीवन एवं पुनर्जन्म की वास्तविकता को समझकर निरंतर विकास की चेतना को ऊर्ध्वमुखी बनाने का प्रयास करना ही उचित एवं आवश्यक है। मनुष्य जन्म की सार्थकता इसी में है। जीवन को शरीर तक सीमित समझकर पशु—प्रयोजनों में ही उलझे रहना तो आत्म—सत्ता का अपमान है, उसकी महानता की अवज्ञा है। इस पाप से बचने और चेतना की अनंतता को स्मरण करते हुए शरीर को नहीं, उसी अविनाशी सत्ता को सुख देने का ध्यान रखना चाहिए।

☐ ☐

अध्याय २

जन्म मृत्यु-मात्र स्थूल जगत् की घटनाएँ

प्राचीन भारतीय इतिहास को आध्यात्मिक उपलब्धियों की श्रृंखला कहें तो आध्यात्मिक साहित्य और दर्शन को तत्त्वदर्शी, ऋषियों, योगी और संतों का इतिहास कहना पड़ेगा। आध्यात्मिक जगत की प्रसिद्ध घटना है कि मंडन मिश्र के जगद्गुरु शंकराचार्य से शास्त्रार्थ में पराजित हो जाने के बाद उनकी धर्मपत्नी विद्योत्तमा ने मोर्चा सँभाला। उसने शंकराचार्य से "काम-विद्या" पर ऐसे जटिल प्रश्न पूछे, जो उन जैसे ब्रह्मचारी संन्यासी की कल्पना से भी परे थे, किंतु उन्हें मंडन मिश्र जैसे महान पंडित की सेवाओं की अपेक्षा थी, सो उन्होंने महिष्मती नरेश के मृतक शरीर में "परकाया-प्रवेश" किया और "काम-विद्या" का गहन अध्ययन किया। उनके द्वारा प्रणीत "काम-सूत्र" इस विद्या का अनुपम ग्रंथ माना जाता है।

इतिहास में इस घटना की तरह ही पाटलिपुत्र के सम्राट महापद्मनंद और चाणक्य भी प्रख्यात हैं, पर वे केवल शासकीय दृष्टि से। बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि महापद्मनंद का शरीर एक था, पर उस शरीर से यात्रायें दो आत्माओं ने की थी। एक स्वयं महापदमनंद ने, तो दूसरे तत्कालीन विद्वान आचार्य उपवर्ष के प्रसिद्ध योगी शिष्य 'इंद्र दत्त' ने।

महर्षि उपवर्ष और उनके अग्रज महर्षि वर्ष का पाटलिपुत्र में ही विशाल तपोवन और गुरुकुल आश्रम था, जिसमें देश-विदेश से आये स्नातक साहित्य, भेषज, व्याकरण और योग विद्या सीखा करते थे। उपवर्ष के शिष्यों में तीन शिष्य ऐसे थे, जिन्हें त्रिवेणी संगम कहा जाता था। प्रथम वररुचि या कात्यायन जो पीछे सम्राट चंद्रगुप्त के महामंत्री बने। इन्होंने पाणिनी के व्याकरण सूत्रों की

टीका की थी। दूसरे थे "व्याडी" इन्होंने एक विशाल व्याकरण ग्रंथ लिखा था, जिसमें सवा लाख श्लोक थे। यह ग्रंथ अंग्रेजों के समय जर्मनी में उठा ले गये थे और आज तक फिर उसका पता ही नहीं चल पाया। केवल मात्र कुछ श्लोक ही यत्र-तत्र मिलते हैं। तीसरे देवदत्त थे, जिनकी योग विद्या में इतनी गहन अभिरुचि थी कि उस युग में उनके समान कोई अन्य योगी न रह गया था। "उपवर्ष ने उन्हें "परकाया प्रवेश" तक की गूढ़ विद्या सिखलाई थी।"

तीनों शिष्यों में प्रगाढ़ मैत्री थी। आश्रम से विदा होते समय तीनों साथ ही महर्षि उपवर्ष के पास गये और उनसे गुरु दक्षिणा माँगने का आग्रह किया। आचार्य प्रवर ने समझाया—वत्स आचार्यों की विद्या योग्य शिष्य पाकर स्वतः सार्थक हो जाती है, तुमने अपने-अपने विषयों में दक्षता और प्रवीणता पाकर मेरा यश बढ़ाया है, यही मेरे लिए पर्याप्त है; तो भी मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि तुम्हें जो ज्ञान, जो प्रकाश और मार्गदर्शन यहाँ मिला, उसका तुम सारे देश में प्रचार-प्रसार करना।

बात पूरी हो गयी थी, किंतु वे तीनों सिद्धि के अहंकार में थे। अतएव कोई न कोई लौकिक वस्तु माँगने के आग्रह पर अड़ गये। गुरु को क्षोभ हुआ, उन्होंने कहा भी—हमने तुम्हें सिद्ध बनाया, किंतु सिद्धि को आत्मसात करने वाली सरलता और गंभीरता नहीं सिखाई, उसी का यह प्रतिफल है—नहीं मानते जाइये और हमारे लिये एक लाख स्वर्ण मुद्राओं का प्रबंध कीजिए।

तीर धनुष से निकल चुका था। मर्मस्थल तो विधना ही था। वररुचि और व्याडी दोनों अभी इस चिंता में थे कि इस कठिन समस्या का निराकरण कैसे हो ? तभी देवदत्त ने मुस्कराकर कहा—हे तात ! आपने सुना है आज महापद्मनंद ने देह परित्याग कर दिया है। मुझे परकाया प्रवेश—विद्या आती है। मैं महापद्मनंद की मृतक देह में प्रवेश कर स्वयं पद्मनंद बनूँगा। इसी खुशी में राजभवन में उत्सव होगा, दान-दक्षिणा बटेगी, उसी में इस धन का

प्रबंध वररुचि को कर दूँगा, व्याडी इस बीच मेरे शव की रक्षा करें, ताकि अपना कार्य पूरा करते ही मैं पुनः अपनी देह में आ जाऊँ।

पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार देवदत्त ने अपने कुटीर में लेटकर 'प्राणायाम' क्रिया के द्वारा अपने प्राणों को शरीर से अलग कर लिया और महाफ्द्मनंद के शरीर में प्रवेश किया, महापद्मनंद पुनः जीवित हो उठे। यह घटना इतिहास-प्रसिद्ध घटना है। सारे राज्य में छाई दुःख की लहर, एकाएक खुशी में बदल गई। चारों ओर उत्सव मनाये जाने लगे।

महापद्मनंद के महामंत्री "शकटार" ने देखा अब पुनर्जीवित महापद्मनंद के संस्कार, गुण, कर्म, स्वभाव, मूल सम्राट के गुणों से बिल्कुल भिन्न हैं। संस्कृत के अल्पज्ञ महापद्मनंद का महान पांडित्य ही संदेह के लिए पर्याप्त था। उधर शकटार को यह भी ज्ञात था कि "देवदत्त" ही एक मात्र ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें परकाया प्रवेश की विद्या आती थी। अतएव यह अनुमान करते देर न लगी कि महापद्मनंद के शरीर में "देवदत्त" की आत्मा के अतिरिक्त और कोई हो नहीं सकता था।

शकटार कुशाग्र बुद्धि थे। परिस्थितियों के सूक्ष्म विश्लेषण के साथ वे प्रख्यात प्रत्युत्पन्नमति महामंत्री थे। यह वह समय था जब सिकंदर झेलम तक आ पहुँचा था और उसने सम्राट पुरु को भी पराजित कर लिया था। अगली टक्कर महापद्मनंद से ही होने वाली थी, यदि उसके निधन की बात सिकंदर तक पहुँच जाती तो उसका तथा उसके सिपाहियों का मनोबल बढ़ जाता, अतएव शकटार ने निश्चय किया कि महापद्मनंद को वे चाहे जो हों, पुनः मरने नहीं दिया जाना चाहिए। शकटार को कई दिनों से व्याडी का पता नहीं चल रहा था जबकि वररुचि इन दिनों व्यर्थ ही राजभवन के आसपास घूमते दिखाई देते थे, अतएव उसे यह अनुमान करते देर न लगी कि व्याडी और कहीं नहीं देवदत्त के शव की रक्षा में ही होगा। शकटार ने विश्वास-पात्र सैनिकों को भेजकर व्याडी के

विरोध के बावजूद देवदत्त के पूर्ववर्ती शरीर का "शवदाह" करा दिया। महापद्मनंद के शरीर में निर्वासित देवदत्त को इस बात का पता चला तो वे माथा पीटते रह गये, पर अब बाजी हाथ से निकल चुकी थी, अतएव रहे तो महापद्मनंद ही पर अब वह पद्मनंद नहीं थे, जो कभी पहले थे, बदले की भावना से उन्होंने जीवन भर स्वामिभक्त सेवक की तरह काम करने वाले महामंत्री शकटार को भी बंदी बना लिया। राजकाज से सर्वथा शून्य देवदत्त (अब महापद्मनंद) ने सर्वत्र अस्त-व्यस्तता फैलाई उसी का प्रतिफल यह हुआ कि उसे एक दिन चाणक्य के हाथों पराजय का मुँह देखना पड़ा।

इस घटना के पीछे किसी राजतंत्र के इतिहास की व्याख्या करना उद्देश्य नहीं वरन् एक बड़े इतिहास—आत्मा के इतिहास की ओर मानव जाति का ध्यान मोड़ना है, सांसारिकता में पड़कर जिसकी नितांत उपेक्षा की जाती है। एक शरीर के प्राण किसी अन्य शरीर में रहें, यह इस बात का साक्षी और प्रमाण है कि आत्मा का शरीर से भिन्न और स्वतंत्र अस्तित्व है। इस शाश्वत सत्ता को न समझने की अज्ञान दृष्टि ही मनुष्य को भौतिकवादी बनाती है, स्वार्थी बनाती है, ऐसे अज्ञानग्रस्त मनुष्य अपने पीछे अंधकार की एक लंबी परंपरा छोड़ते हुए जाते हैं और प्रकाश पथ का पथिक, आनंद-मूर्ति, आत्मा, अंधकार और सांसारिक बाधाओं में मारा-मारा फिरता रहता है।

योग मार्ग उस सत्ता से संबंध जोड़ने, आत्मानुभूति कराने का सुनिश्चित साधन है। यह राह भले ही कठिनाईयों की, आत्म नियंत्रण आत्म-सुधार की हो, पर एक वैज्ञानिक पद्धति है, जिसके परिणाम सुनिश्चित होते हैं। उस कठिन मार्ग पर चलाने वाली आस्था को ऐसी परिस्थितियाँ निःसंदेह परिपुष्ट करती हैं, इस तरह की घटनाएँ उसी युग में ही होती रही हों ऐसी बात नहीं, आज भी इस देश में ऐसे योगी हैं जो इस विद्या को जानते हैं।

बात उन दिनों की है जब भारतवर्ष में अंग्रेजों का राज्य था। उन दिनों पश्चिमी कमांड के मिलिटरी कमांडर एल० पी० फैरेल थे। उन्होंने अपनी आत्म-कथा में एक मार्मिक घटना का उल्लेख इन शब्दों में किया है—

"मेरा कैंप आसाम में ब्रह्मपुत्र के किनारे लगा हुआ था। उस दिन मोर्चे पर शांति थी। मैं जिस स्थान पर बैठा था उसके आगे एक पहाड़ी ढलान थी, ढाल पर एक वृद्ध साधु को मैंने चहलकदमी करते देखा। थोड़ी देर में वह नदी के पानी में घुसा और एक नवयुवक के बहते हुए शव को बाहर निकाल लाया। वृद्ध साधु अत्यंत कृशकाय थे, शव को सुरक्षित स्थान तक ले जाने में उन्हें कठिनाई हो रही थी तथापि, वे यह सब इतनी सावधानी से कर रहे थे कि शव को खरोंच न लगे, यह सारा दृश्य मैंने दूरबीन की सहायता से बहुत अच्छी तरह देखा।"

"इस बीच अपने सिपाहियों को आदेश देकर मैंने उस स्थान को घिरवा दिया। वृद्ध वृक्ष के नीचे जल रही आग के किनारे पालथी मारकर बैठे। दूर से ऐसा लगा वे कोई क्रिया कर रहे हों थोड़ी देर यह स्थिति रही, फिर एकाएक वृद्ध का शरीर एक ओर लुढ़क गया, अभी तक जो शव पड़ा था, वह युवक उठ बैठा और अब वह उस वृद्ध के शरीर को निर्ममता से घसीटकर नदी की ओर ले चला। इसी बीच मेरे सैनिकों ने उसे बंदी बना लिया, तब तक कौतूहलवश मैं स्वयं भी वहाँ पहुँच गया था। मेरे पूछने पर उसने बताया—महाशय ! वह वृद्ध मैं ही हूँ। यह विद्या हम भारतीय योगी ही जानते हैं। आत्मा के लिए आवश्यक और समीपवर्ती शरीर, प्राण होते हैं, मनुष्य देह तो उसका वाहन मात्र है। इस शरीर पर बैठकर वह थोड़े समय की जिंदगी की यात्रा करता है, किंतु प्राप्त शरीर तो उसके लिए तब तक साक्षी है, जब तक कि वह परम-तत्त्व में विलीन न हो जाये।"

"हम जिसे जीवन कहते हैं—प्राण, शरीर और आत्मा की शाश्वत यात्रा की रात, उसका एक पड़ाव मात्र है, जहाँ वह कुछ क्षण (कुछ दिनों) विश्राम करके आगे बढ़ता है। यह क्रम अनंत काल तक चलना है। जीव उसे समझ न पाने के कारण ही अपने को पार्थिव मान बैठता है, इसी कारण वह अधोगामी प्रवृत्तियाँ अपनाता, कष्ट भोगता और अंतिम समय अपनी इच्छा शक्ति के पतित हो जाने के कारण मानवेतर योनियों में जाने को विवश होता है। मुक्ति और स्वर्ग प्राप्ति के लिए प्राण शरीर को समझना, उस पर नियंत्रण आवश्यक होता है। यह योगाभ्यास से संभव है। अभी मुझे इस संसार में रहकर कुछ कार्य करना है, जबकि मेरा अपना शरीर अत्यंत जीर्ण हो गया था, इसी से यह शरीर बदल लिया।"

उस व्यक्ति की बातें बड़ी मार्मिक लग रही थीं। मन तो करता था कि और अधिक बातें की जायें, किंतु हमारे आगे बढ़ने का समय हो गया था, अतएव इस प्रसंग को यहीं रोकना पड़ा, पर मुझे न तो वह घटना भूलती है और न यह तथ्य कि हम पश्चिमवासी रात को दिन, अंधकार को ही प्रकाश मान बैठे हैं, इससे अवांतर जीवन के प्रति हमारी प्रगति एकदम रुकी है। यह मरण का वीभत्स रास्ता है, उससे बचने के लिए एक दिन पूर्व का अनुसरण करना पड़ेगा।

ऊपर की दो घटनाएँ परकाया प्रवेश की, यह सिद्ध करती हैं कि शरीरों और शारीरिक सुखों के लिए मानवीय मोह, माया मिथ्या है शरीर को, आत्मा का देवमंदिर समझकर उसकी पवित्रता तो रखी जाये, पर उसे विषय वासनाओं के द्वारा इस तरह गंदा गलीज और घृणास्पद न बनाया जाये कि अपना अंतःकरण ही धिक्कार कर उठे। पश्चिम की एक ऐसी ही घटना यह सिद्ध करती है कि शारीरिक विषय वासनाओं की आसक्ति किस तरह बार-बार शरीरों में आने को विवश होती हैं, यहाँ तो प्राण सबल था, अतएव दो

आत्माएँ एक शरीर के लिए झगड़ती रहीं; किंतु जब प्राण निर्बल हो तो कीड़े-मकोड़ों की अभावग्रस्त जिंदगी ही मिलना स्वाभाविक है।

मिशिगन (अमेरिका) के एक छोटे से गाँव वैटल कीक में वाल्टर सोडरस्ट्रास नामक एक व्यक्ति रहता था। वह एक ऊन की फैक्ट्री में काम करता था। आगे प्रस्तुत घटना १३ सितम्बर, १८५१ में 'न्यूयार्क मरकरी' अंक में इन्हीं सोडर स्ट्राम ने छपाई।

वाल्टर को समुद्री नौकायन का शौक था। वे जिस टापू पर नौका विहार और मछलियाँ पकड़ने जाया करते, उस पर एक कुटिया थी, जिस पर एक अधेड़ आयु का व्यक्ति रहता था। अक्सर आते-जाते वाल्टर की उनसे जान-पहचान हो गई थी। एक दिन तूफान और आकस्मिक वर्षा के कारण वाल्टर ने रात उस कुटिया में ही बिताई। जिस समय तूफान का दौर चल रहा था, स्ट्रैंड नामक उस व्यक्ति की स्थिति बड़ी विचित्र रही। वह इस तरह काँपता रहा जैसे कोई पत्ता काँपता हो, यही नहीं बीच-बीच में वह भयंकर चीत्कार भी करता। इस चीत्कार में वह कभी एक भाषा निकालता कभी सर्वथा अनजान दूसरी। वाल्टर स्काट ने वह रात बड़ी कठिनाई से बिताई—वे लिखते हैं—उसकी देह बुरी तरह कसमसा कर ऐंठती थी तो लगता था कि दोनों ओर से पकड़कर दो आदमी उसे निचोड़ रहे हों। थोड़ी देर तक शरीर पीला और निढाल रहा पीछे स्ट्रैंड मुस्कराकर उठ बैठा। पूछने में पहले तो वह टालता रहा, पर बहुत आग्रह करने पर उसने बताया कि एक फ्रांसीसी की आत्मा भी इस शरीर पर आने रहने के लिए अक्सर प्रतिद्वंद्व करती है। उसने बताया कि वास्तव में यह शरीर उसी का है, किंतु शक्तिशाली होने के कारण इस पर मैंने आधिपत्य जमा रखा है। उसने जेब से एक लाइटर और एक डायरी भी दी जो उन फ्रान्सीसी के थे। लाइटर पर जेकब ब्यूमांट लिखा था। वाल्टर उन्हें लेकर चले आये यह घटना मस्तिष्क पर छाई रही।

कुछ दिन बाद वाल्टर को पेरिस जाने का अवसर मिला, कौतूहल बस वह डायरी के अनुसार पता लगाते हुए ब्यूमांट तक पहुँच गये। वहाँ जाकर उसने पाया कि वही स्ट्रैंड जो टापू में रहता था, वहाँ विद्यमान था। वाल्टर को उसने पहचाना तक नहीं, पर उसने अपनी जेब से वाल्टर को फोटो निकालकर बताया कि आपका यह फोटो मेरे पास कैसे आया मुझे ज्ञात नहीं। वाल्टर के स्मरण कराने पर वह अपने को ब्यूमांट ही बताता रहा—अलबत्ता उसने यह बात स्वीकार की कि उसका एक अमेरिकी आत्मा से लंबे समय तक शरीर के लिए संघर्ष हुआ है और उसमें अंतिम विजय उसकी रही।

एक तीसरी घटना का उल्लेख यहाँ प्रासंगिक है, जिसमें एक ही आत्मा द्वारा विभिन्न शरीर उसी तरह बदलने का जिक्र है। जिस तरह एक शहर से ट्रांसफर के बाद दूसरे शहर में आवास किराये पर लेना पड़ता है। वह घटना थोड़े ही समय पूर्व की है।

१९५५ में लंदन में एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। जिसका नाम है "द थर्ड आई।" यह पुस्तक एक अंग्रेज ने लिखी, पर उसने अपना नाम उसमें 'टी० लोवसंग' (तिब्बती नाम) लिखा है। १९५८ के मार्च की 'नवनीत' में उसका विस्तृत विवरण छपा है, जिसमें यह बताया गया है कि जिस अंग्रेज को तिब्बत के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, जिसने इंग्लैंड से बाहर कभी कदम नहीं रखा, उसने न केवल तिब्बत की भौगोलिक जलवायु संबंधी, अपितु वहाँ के मंदिरों, मठों, लामाओं तथा दलाई लामा के वह सूक्ष्म विवेचन और संस्मरण लिखे हैं, जिनकी जानकारी उसे कभी संभव ही नहीं हो सकती थी।

अपनी पुस्तक में लेखक ने अपने लामा गुरु मिंग्यार का वर्णन करते हुए लिखा है कि परकाया प्रवेश की विद्या मैंने उन्हीं से सीखी और उन्हीं के आदेश से अब तक मैंने तीन शरीर बदले हैं। यह ग्रंथ पूरा करने के बाद ही मैं यह अंग्रेज शरीर भी छोड़ दूँगा

और सचमुच ही पुस्तक लिखने के बाद यह अंग्रेज मृत पाये गये। मृतक की देह पर न तो किसी आघात के लक्षण थे न ही वह कृत्रिम मृत्यु थी। शरीर के प्रत्येक अंग को व्यवस्थित करके इस तरह प्राण निकले मानो सचमुच किसी यात्रा की तैयारी में रहे हों। इस घटना के बाद जहाँ एक ओर इसके बारे में तहलका मचा, खोज करने पर वह स्थान, वह परिस्थितियाँ सच निकलीं, दूसरी ओर लोग आत्म-सत्ता की सामर्थ्य, शरीर के माध्यम मात्र होने तथा जन्म—जन्मांतर तक चेतना-प्रवाह के अविच्छिन्न रहने की प्रामाणिकता और उसकी उपयोगिता स्वीकारने और समझने को विवश हो रहे हैं।

परामनोविज्ञान के आधुनिक अनुसंधानों के क्रम में ऐसे अनेक प्रमाण एकत्रित किये गये हैं, जिनसे मनुष्यों का पूर्व जन्म होने के प्रमाण मिलते हैं। ऐसे अन्वेषणों में प्रो० राइन की खोजें बहुत विस्तृत और प्रामाणिक मानी गयी हैं। उनके आधार पर अन्यत्र भी इस दिशा में बहुत सी जाँच-पड़ताल हुई है। इस खोजबीन के निष्कर्ष इस मान्यता का पलड़ा भारी करते हैं कि आत्मा का अस्तित्व मरने के बाद भी बना रहता है और वह पुनर्जन्म धारण करती है। हिंदू धर्म में आत्मा की अमरता एवं पुनर्जन्म की सुनिश्चितता को आरंभ से ही मान्यता प्राप्त है, किंतु संसार में दो प्रमुख धर्मों—ईसाई और इस्लामी धर्मों के बारे में ऐसी बात नहीं है; उनमें मरणोत्तर जीवन का अस्तित्व तो माना जाता है, पर कहा जाता है कि वह प्रसुप्त स्थिति में बना रहता है। महा प्रलय होने के उपरांत फिर कहीं नया जन्म मिलता है। इतने विलंब से पुनर्जन्म होने की बात न होने जैसा ही बन जाती है। ऐसी दशा में इन धर्मों के अनुयायियों के बारे में पुनर्जन्म न मानने जैसी ही मान्यताएँ हैं। ऐसी दशा में उस प्रकार की घटनाओं एवं प्रमाणों को न तो खोजा ही जाता है और न वैसा कोई प्रमाण मिलने से उन पर ध्यान ही दिया जाता है। पर अब धार्मिक कट्टरता घट जाने और तथ्यों पर

ध्यान देने की चल पड़ी है। विज्ञान और बुद्धिवाद के समन्वय ने यह नयी दृष्टि दी है। अस्तु, पाश्चात्य देशों में तथ्यों पर ध्यान देने की प्रवृत्ति नेत्र पुनर्जन्म के संबंध में भी जाँच-पड़ताल करने पर जो तथ्य सामने आये, उन पर विचार करने के संबंध में उत्साह उत्पन्न किया है।

विगत शताब्दी में योरोप में सबसे पहली किताब फ्रेडरिक स्पेन्सर ओलीवर द्वारा लिखित 'एन अर्थ डवेलर्स रिटर्न' थी जिसमें उसने अपने पिछले ३२ जन्मों का हाल लिखा था। उसका कथन था यह पुस्तक उसने नहीं लिखी, किंतु किसी दिव्यात्मा ने उसके शरीर में प्रवेश करके लिखाई है। इस पुस्तक के पीछे तर्क और प्रमाण न होने से उसे विश्वस्त तो नहीं माना गया, पर जब उसमें की गई भविष्यवाणियों में से कितनी ही सही सिद्ध हुई तो वह बहुचर्चित अवश्य बन गई।

इसके बाद मनोविज्ञान और चिकित्साशास्त्र में समान रूप से ख्याति प्राप्त डॉ० जीना सरमी नारा द्वारा लिखित 'मैनौ मेन्शन' का नंबर आता है, जिसमें ऐसे कितने ही आधार प्रस्तुत किये गये हैं, जिनसे शरीर न रहने पर भी आत्मा का अस्तित्व बना रहने तथा फिर से जन्म होने की बात पर विश्वास जमता है।

उन्नीसवीं सदी में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाण एक जीवित व्यक्ति का सामने आया, जिसने पुनर्जन्म की मान्यता को वैज्ञानिकों और मनीषियों की गहरी खोज का विषय बनाने के लिए विवश किया, उस व्यक्ति का नाम था एडगर कैसी। उसमें ऐसी चेतना उभरी, जो कितने ही व्यक्तियों के पूर्व जन्मों के हाल बताती थी। ऐसे तो इस प्रकार की बातें ढोंगी और अर्ध-विक्षिप्त लोग भी करते रहते हैं, पर कैसी के कथनों में यह विशेषता होती थी कि वह जो कुछ बताता था तलाश करने पर उसके सारे प्रमाण यथावत मिल जाते थे। वर्णन इतने पुराने, इतनी दूर के और इतने महत्त्वहीन होते थे कि उन्हें किसी प्रकार पूर्व संग्रह करके तब कहीं बताने

जैसी न तो आशंका की जा सकती थी और न वैसी संभावना ही थी। टेढ़े-मेढ़े परीक्षणों पर जब उसके कथन को बुद्धिजीवियों द्वारा जाँचा और सही पाया गया तो उसके कथन को महत्त्व दिया गया और पुनर्जन्म के संबंध में नये सिरे से नये उत्साहपूर्वक शोध प्रयास आरंभ हुए।

अमेरिका के कैंटकी प्रांत में होपकिन्स विले नामक व्यक्ति देहात में हुआ। वह अपने अन्य परिवारियों की भाँति नाम मात्र को ही शिक्षित था। उसे सम्मोहन विद्या से वास्ता पड़ा। वह उस तंद्रा में ऐसी बातें करने लगा, जिन्हें अतींद्रिय अनुभूतियों की संज्ञा मिलने लगी। आरंभिक दिनों में वह रोगियों के कष्ट, निदान एवं उपचार के संबंध में तंद्रित स्थिति में परामर्श देता था, जो लाभदायक सिद्ध होते थे। फिर उसमें पिछले जन्मों का हाल बताने की नई क्षमता जागी। उसने सैकड़ों के पूर्व जन्मों के विवरण बताये और वे सभी ऐसे थे, जो तलाश करने पर सही प्रमाणित हुए। इन प्रमाणों की साक्षी कहाँ से प्राप्त की जाए ? इस संदर्भ में उसने अनेकों सरकारी और गैर-सरकारी कागजों में दर्ज ऐसे पुराने विवरण बताये, जिनका साधारण रीति से पता लगाना अति कठिन था। साक्षी रूप में वे ढूँढ़े गये तो जैसा कि उल्लेख बताया गया था, ठीक उसी रूप में उसी तरह वह सब मिल गया।

इसी प्रकार कैसी ने ऐसे विवरण भी बताये, जिनमें पुराने जन्मों के दुष्कर्मों का फल इस जन्म में मिलने के सिद्धांत की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। इन कष्ट-पीड़ितों में अधिकांश विकलांग एवं रोगी थे। उन्हें यह विपत्ति किस कारण उठानी पड़ रही है, इसके संदर्भ में विवरण बताये गये, वे भी उस कथन की पुष्टि के लिए सबल साक्षी थे। इनकी प्रामाणिकता भी बताये घटनाक्रम के साथ भली प्रकार खोजी गई और जो बताया गया था वह सही मिला। इस प्रकार कैसी रोग चिकित्सा—पूर्व जन्म और कर्मफल के

तीन तथ्यों पर ऐसे रहस्यमय प्रकाश डालता रहा जो इससे पूर्व इतनी अच्छी तरह कभी भी सामने नहीं आये थे।

सम्मोहन—विद्या के उपयोग द्वारा पुनर्जन्म—सिद्धांत की प्रामाणिकता को पुष्ट करने वाले ऐसे ही एक व्यक्ति और हुए हैं। उनका नाम था कर्नल डिरोचाज।

दिसम्बर १६०४ का एक दिन। एक फ्रांसीसी इंजीनियर के घर खचाखच भीड़ से भरे वातावरण में अधेड़ आयु के व्यक्ति कर्नल डिरोचाज ने प्रवेश किया। कर्नल को देखते ही लोगों में खामोशी छा गई। एक सर्वथा विचित्र प्रयोग था, यह लोग पुनर्जन्म के प्रमाण देखने उपस्थित हुए थे। कर्नल ने इंजीनियर की लड़की मेरी मेव को स्वच्छ आसन पर बैठाया, उसकी दृष्टि में अपनी दृष्टि डालकर वे कुछ क्षणों तक एकटक देखते रहे, थोड़ी ही देर में लड़की की बाह्य चेतना शून्य हो चली, कर्नल ने उसे आहिस्ता से लिटा दिया और उसकी देह को हल्की काली चादर से ढक दिया।

दैवयोग से कर्नल डिरोचाज ने भारतीय दर्शन की इस मीमांसा की अनुभूति कर ली थी। वे मैस्मरेजम के सिद्ध थे और इस विद्या द्वारा जीवन के गूढ़ रहस्यों का पता लगाने में सफल हुए थे। उन्होंने न केवल फ्रांस वरन् सारे योरोप को यह बताया था कि जीवन के बारे में पाश्चात्य मान्यता भ्रामक और त्रुटि पूर्ण है, हमें इस संबंध में अंततः भारतीय दर्शन की ही शरण लेनी पड़ेगी। अपने इस कथन को प्रमाणित करने के लिए ही वे यह प्रयोग कर रहे थे। उस प्रयोग को देखने के लिए फ्रांस के बड़े शिक्षाविद् और वैज्ञानिक भी उपस्थित थे।

मेरी मेव के पिता सीरिया में इंजीनियर थे। मेरी स्वयं भी प्रतिभाशाली लड़की थी। मेस्मरेजम द्वारा उसे अचेत कर लिटा देने के बाद कर्नल साहब ने उपस्थित लोगों की ओर देखकर कहा—अब मेरा इस लड़की के सूक्ष्म शरीर पर अधिकार है, मैं इसे

काल और ब्रह्मांड की गहराइयों तक ले आने और वहाँ के सूक्ष्म रहस्यों का ज्ञान करा लाने में समर्थ हूँ।

किसी जमाने में भारत में प्राण-विद्या के आधार पर प्राणों द्वारा आरोग्य प्रदान करने, गुप्त रहस्य ढूँढ़ने के प्रयोग हुआ करते थे। कर्नल डिरोचाज का यह प्रयोग भारतीय सिद्धांतों का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह अनेक विलायती पत्रों में छपा था। पीछे इसे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मासिक 'सरस्वती' में छपाया था। उसी से यह घटना "आध्यात्मिकी" पुस्तक के लिए उद्‌धृत की गई। यह पुस्तक इंडियन प्रेस लि० प्रयाग से प्रकाशित हुई।

कर्नल डिरोचाज अब प्रयोग के लिए तैयार थे। उन्होंने मेरी मेव को संबोधित कर पहला प्रश्न किया—अब तुम्हें कैसा अनुभव हो रहा है, क्या दिख रहा है ? प्राण पाश में बद्ध अचेतन कन्या ने उत्तर दिया—मैं नीले और लाल रंग की छाया देख रही हूँ। यह प्रकाश मेरे भौतिक शरीर से अलग हो रहा है और मैं अनुभव कर रही हूँ कि मैं शरीर नहीं प्रकाश जैसी कोई वस्तु हूँ, अब मैं अपने शरीर से एक गज के फासले पर स्थित हूँ, पर जिस तरह विद्युत कण एक रेडियो को रेडियो स्टेशन से संबंध किए रहते हैं उसी प्रकार मेरा यह शरीर एक रस्सी की तरह पार्थिव शरीर से बँधा हुआ है। मेरे इस रंगीन प्रकाश शरीर के भीतर दिव्य ज्योति परिलक्षित हो रही है, मैं यही तो आत्मा हूँ।

कर्नल ध्यानावस्थित हो गये। उन्होंने कहा—मेव ! अब तुम अपनी वर्तमान आयु से कम आयु की ओर चलो और क्रमशः छोटी आयु की ओर चलते हुए यह बताओ कि तुम इस शरीर में आने के पूर्व कहाँ थी ? कौन थीं ?

कर्नल के प्रश्न बड़े विचित्र लग रहे थे, पर उनमें एक अदृश्य सत्य झाँक रहा था। उपस्थित जन-समुदाय स्तब्ध बैठा सारी गतिविधियों को देख, सुन रहा था। जब यह प्रयोग हो रहा था, मेरी मेव १८ वर्ष की थी। अब वह बोली—मैं १६ वर्ष की आयु

के दृश्य देख रही हूँ अब १४, अब १२ और अब १० की आयु के चित्र मेरे सामने हैं इस समय मैं मारसेल्स में हूँ अपने पिता के साथ, एक विस्तृत जीवन के दृश्य मेरे सामने हैं। अब मैं क्रमशः छोटी हुई जा रही हूँ। फिर वह कुछ देर तक चुप रही।

फिर बताना प्रारंभ किया अभी-अभी मैं १ वर्ष की थी बोल नहीं पाई अब मैं अपने पूर्व जन्म के शरीर में हूँ। इस शरीर से निकलने के बाद मुझे किसी अज्ञात प्रेरणा ने "मेरी मेव" के शरीर में पहुँचा दिया था—अब मैं पहले जन्म के शरीर में छोटी हो रही हूँ और देख रही हूँ कि यह ग्रेट ब्रिटेन का समुद्री तट है, मैं एक मछुये की लड़की हूँ। मेरा नाम 'लीना' है। २० वर्ष की आयु में मेरी शादी हुई। मेरी एक कन्या हुई। वह दो वर्ष की आयु में मर गई। मेरा पति मछलियाँ मारता है। उसके पास एक छोटा-सा जहाज है, वह समुद्री तूफान में नष्ट हो गया, उसी में मेरे पति की मृत्यु हो गई, मैं बहुत दुःखी हूँ, मैं भी समुद्र में डूबकर मर गई हूँ; मछलियों ने मेरा शरीर खाया मैं वह सब देख रही हूँ। इस सूक्ष्म शरीर में मैंने वैसी ही अनेकों आत्माएँ देखीं, मैंने कुछ बात भी करनी चाही, पर मेरी बात ही किसी ने नहीं सुनी, मैं भटकती फिरी पति और बच्चे की याद में। वे मुझे मिले नहीं। हाँ, एक नया शरीर अवश्य मिल गया।

यहाँ तक जो कुछ मेरी मेव ने बताया पीछे जाँच करने पर वह प्रामाणिक तथ्य निकला।

ऐसी ही एक घटना का विवरण एक रूसी विचारक ने दिया है। बात उन दिनों की है जब रूस में क्रांति मच रही थी। वहाँ के डेनियल बेवर नामक प्रसिद्ध विचारक उन दिनों चीन में एक लामा के बारे में उत्सुक थे। उन्होंने सुन रखा था कि वह किसी भी भूतकालीन घटनाओं को स्वप्न में दिखा देने की क्षमता रखता है।

श्री बेवर उस तांत्रिक से एक बौद्ध मंदिर में मिले और उस तरह का प्रयोग देखने की इच्छा प्रकट की। लामा ने एक नवयुवक पर प्रयोग करके दिखाया। योग निद्रा द्वारा स्वप्न की अनुभूति

कराने के बाद लामा ने पाल नामक इस युवक से पूछा—तुमने क्या देखा ? उसने बताया मैंने देखा कि मैं रूस के सेंटपीटवर्ग नगर में हूँ। मेरी प्रेमिका एक बड़े शीशे के सामने खड़ी शृंगार कर रही है। उसे उसकी दासियाँ "क्रॉस ऑफ अलेक्जेंडर" हीरे की अँगूठियाँ पहना रही हैं, मैंने मना किया कि तुम यह अँगूठी मत पहनो। मैंने सारी बातचीत रूसी भाषा में ही की। अपनी प्रेमिका से मिलन का यह स्वप्न बड़ा ही मधुर रहा। "तभी एक दूसरा स्वप्न भी दिखाई दिया। मैंने अपने आप को एक परिवर्तित दृश्य में निर्जन रेगिस्तान में पाया। मेरे दो बच्चे भूख से तड़प रहे हैं, पर मैं उनके लिए भोजन नहीं जुटा पाया। मुझे एक ऊँट ने हाथ में काट लिया, मेरा अंत बड़ी दुःखद स्थिति में हुआ।"

अपने सम्मुख यह घटना देखने के बाद डॉ० बेवर रूस लौटे। देवयोग से एक बार सेंट पीटर्स में उनकी भेंट एक स्त्री से हुई। उससे इस बात का क्रम चल पड़ा तो वह एकाएक चौंकी और बोली—'आप जिस महल की बातें बता रहे हैं, वह मेरा ही मकान है मेरे पास 'क्रॉस ऑफ एलेक्जेंडर' हीरे की अँगूठी भी थी। मैंने उसे कई बार पहनना चाहा किंतु मेरा प्रेमी रास्पुटिन इसे पसंद नहीं करता था। ठीक जिस प्रकार आपने पाल की घटना सुनाई वह मुझे यह अँगूठी पहनने से रोकता था।

डॉ० बेवर उस स्त्री के साथ उसके घर गये। हू बहू वही दृश्य जो स्वप्न में देखकर पाल ने बताये थे। डॉ० बेवर आश्चर्य चकित रह गये और माना कि स्वप्न सत्य था और यह भी कि जीवात्मा के पुनर्जन्म का सिद्धांत मिथ्या नहीं है; वे सहारा जाकर दूसरी घटना की भी जाँच करना चाहते थे पर कोई सूत्र न मिल पाने से वे निराश रह गये। लेकिन यह सत्य था कि उनको जितनी भी जानकारियाँ मिलीं, उन्होंने इन मान्यताओं का समर्थन ही किया। इन घटनाओं का उल्लेख प्रो० बेवर ने अपनी पुस्तक 'द मेकर ऑफ द बेनली ट्राउजर्स' में किया है।

अमेरिका के कोलोराडी प्यूएली नामक नगर में रूथ सीमेन्स नामक लड़की ने अपने पूर्वजन्म का सही हाल बताकर ईसाई धर्म के उन अनुयायियों को आश्चर्य में डाल दिया है, जो पुनर्जन्म के सिद्धांत को नहीं मानते। उपरोक्त लड़की को 'मोरे बर्नस्टाइन' नामक आत्म विद्या विशारद ने अपने प्रयोग से अर्धमूर्च्छित करके उसके पूर्व जन्म की बहुत सी जानकारियाँ प्राप्त कीं। उसने बताया कि १०० वर्ष पूर्व आयरलैंड के कार्क नामक नगर में पहले उसका जन्म हुआ था, तब उसका नाम ब्राइडी मर्फी और उसके पति का नाम मेकार्थी था। जो बात लड़की ने बताई थी उनकी जाँच करने अमेरिका के कुछ पत्रकार आयरलैंड गये और लड़की के बताये विवरणों को सही पाया।

कालातीत चेतना-प्रवाह

मंगोलिया से अरब तक पहुँचने के लिए अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, जोर्डन आदि देश पार करके जाया जा सकता है। कई दिन की हवाई यात्रा क्या एक क्षण में संभव है ? अपने जीवन की एक अद्‌भुत घटना का वर्णन करते हुए इस प्रश्न का उत्तर और भारतीय दर्शन के—कालातीत आत्मा के सिद्धांत की पुष्टि का प्रमाण प्रस्तुत किया है, अरब के सुप्रसिद्ध दार्शनिक और योगी श्री सुग-अल—जहीर ने।

श्री जहीर योग की उच्च—भूमिका में प्रवेश के इच्छुक थे—तब वे एक गृहस्थ का जीवन जी रहे थे। सांसारिक सुखोपभोग के बीच कभी-कभी वे अपनी वृद्धावस्था और मृत्यु की कल्पना करते तो चित्त डोल जाता, वैराग्य उत्पन्न होता और वे सोचने लगते, क्या संसार के अंतिम—सत्य के दर्शन नहीं हो सकते ? इस जिज्ञासा ने ही उन्हें बौद्ध-योगियों की शरण लेने और साधना जन्य जीवन जीने की प्रेरणा दी थी। तभी उन्होंने गृहस्थ का परित्याग कर दिया। एक लामा योगी को अपना मार्गदर्शक उन्होंने चुना और योगाभ्यास प्रारंभ कर दिया।

उन्हीं दिनों की घटना है श्री जहीर अपने गुरु और कुछ अन्य लामाओं के साथ वन-विहार के लिए निकले थे। योग और उच्चस्तरीय साधनाओं में जहाँ शारीरिक चेतना और मन में तीव्र परिवर्तन तथा विचार मंथन प्रारंभ हो जाता है, वहाँ सांसारिक विषय-वासनाओं तथा पूर्व जन्मों के अशुभ प्रारब्ध-योग भी पूरा जोर आजमाते हैं। साधक पथ-भ्रष्ट न हो जाये, उसकी आत्म-निष्ठा प्रगाढ़ बनी रहे ताकि वह योग की कठिनाइयों को पार करने का साहस स्थिर रख सके, विज्ञ योगी और मार्गदर्शक साधक को शक्ति भी देते हैं और अपनी सिद्धि का लाभ भी। वन में घूम रहे अल-जहीर के मस्तिष्क में आत्मा के अस्तित्व और उसकी प्राप्ति के संदर्भ में तर्क-वितर्क उठ रहे थे। मन की बात जान लेने वाले सूक्ष्मदर्शी लामा—गुरु ने उनके अंतःकरण को पढ़ा। पास में पड़े एक प्रस्तर खंड पर बैठते हुए उन्होंने कहा—तुम लोग थक गये होगे, वह देखो ! वह रहा जलकुंड, वहाँ से पानी पीकर आ जाओ और थोड़ा विश्राम कर लो तब चलेंगे।

अल-जहीर और अन्य लामा जब तक लौटे, मार्गदर्शक—लामा ने एक श्वेत पत्थर का तस्तरीनुमा टुकड़ा कहीं से प्राप्त कर लिया। श्री जहीर के वापस आते ही बोले—जो-जो आत्मा सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है, वही विराट ब्रह्मांड में, तुम चाहो तो कालातीत आत्मा की अनुभूति इसी पत्थर में ही कर सकते हो।

सो कैसे—? जिज्ञासु जहीर ने प्रश्न किया। लामा ने बताया—योगी में जब तक आत्मानुभूति की क्षमता का स्वतः विकास नहीं हो जाता, तब तक उसकी चेतना को सम्मोहित कर सुषुप्ति अवस्था में यत्नपूर्वक ले जाया जा सकता है—और उसके अनेक पिछले जन्मों का—दृश्यों का ज्ञान कराया जा सकता है। आत्मा चूँकि काल से अतीत है, इसलिए उसकी गहराई तक पहुँच कर स्वयं को आत्म-स्वरूप में परिणत करना तो समय और साधना

साध्य प्रक्रिया है, किंतु कुछ एक जन्मों का पूर्वाभास कराया जाना नितांत संभव है। लो अब तुम इस पत्थर पर अपनी दृष्टि जमाना और मैं तुम्हें उसकी अनुभूति कराऊँगा।

जहीर ने पत्थर में दृष्टि जमाते ही अनुभव किया कि उनकी बाह्य चेतना ज्ञान शून्य हो चली और अब वे धीरे-धीरे प्रगाढ़ निद्रा की ओर बढ़ चले। अब जैसे कोई स्वप्न देखता है, स्वप्न में कुआँ, बावड़ी, जानवर देखता है वैसे ही श्री जहीर ने देखा कि एक अत्यंत तेजस्वी दिव्य आत्मा उनके सम्मुख खड़ी कह रही है—लो अब तुम तैयार हो जाओ मैं तुम्हें उस निविड़ की ओर ले चलता हूँ जहाँ सब कुछ आत्मा ही आत्मा-चेतना ही चेतना है, अचेतन और अनात्म कुछ भी नहीं है। श्री जहीर आगे लिखते हैं—

"अभी तक सामने घिरा अंधकार दूर हो गया और मुझे लगा कि मैं समय की सीमाओं को छोड़ता हुआ अपने भूतकाल की ओर बढ़ रहा हूँ। जैसे कल्पना के साथ विचार ही नहीं उठते, दृश्य भी मानस पटल पर बनते जाते हैं। उसी प्रकार भूतकाल के प्रवाह में विगत जीवन की स्मृतियाँ भी सजीव हो चलीं। मैंने देखा मैं पूर्व जन्म में एक सामान्य व्यक्ति था और भौतिक आकर्षणों से घिरा जीवन जीकर नष्ट हो गया। उससे भी पूर्व लगता था मैं कोई पक्षी रहा होऊँ, हवा में उड़ने और पृथ्वी के ऊपर विचरण के वह दृश्य कभी साँस को तेज कर देते कभी मद्धिम और मैं अपने विचारों की धड़कन भी स्पष्ट सुन रहा था। अतींद्रिय अवस्था में विचार ही वाणी का काम करते हैं।"

"अब मैंने अपने आपके चार जन्म पूर्व के जीवन के बासठवें वर्ष में प्रवेश किया। रेल में बैठा यात्री जिस प्रकार रेलवे लाइन के किनारे-किनारे के दृश्य देखता है—वृक्ष, मकान, दुकानें, खेत, नहरें वैसे ही आत्म-चेतना के प्रवाह में अतीत दृष्टिगोचर होता चल रहा था। प्रभावी दृश्यों की तरह उस समय की प्रभावी अनुभूतियाँ आज भी भूलतीं नहीं। मैं तब काली आँखों वाला एक योगी था और मैंने

देखा कि मेरा मठ भी यहीं मंगोलिया में ही था जहाँ इन दिनों मैं विचरण कर रहा हूँ, आश्चर्य है कि पूर्व जन्मों के संस्कार किस प्रकार मनुष्य को खींच-खींच ले जाते हैं। मैंने देखा एक दिन मेरे पास एक सुंदर युवती आई उसे देखते ही मैं अपनी सारी साधना, सारा ज्ञान, भूल बैठा। वह स्त्री मेरे योगच्युत होने का कारण बनी। जहाँ मैं आत्मा के साक्षात्कार की दिशा में बढ़ रहा था, वहाँ कामग्रस्त मुझ योगी को रोग और शोक, आधि-व्याधि और पतन ने आ घेरा। कर्म की प्रतिक्रिया से भला संसार में कौन बचा है ? मेरे इस शरीर का अंत भी बड़ा दुःखद हुआ और इसके बाद का तो बड़ा घृणित जन्म जीना पड़ा मुझे।"

यह विवरण किसी कल्पना लोक की अतिरंजना नहीं वरन् एक उस धर्म और देश के प्रख्यात दार्शनिक श्री सुगअल—जहीर की आप—बीती और अपनी लेखनी से लिखी यथार्थ घटना है, जिसमें आत्मा के आवागमन—पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं किया जाता। अरब देश और इस्लाम धर्म में जन्मे श्री जहीर ने स्वीकार किया है कि आत्मा के अस्तित्व और विज्ञान संबंधी इस्लामी मान्यताएँ गलत हैं। योग साधनाओं द्वारा प्राप्त यथार्थ के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि भारतीय आत्म विद्या जैसा सच्चा और महान विज्ञान दुनिया में अन्यत्र नहीं। एक दिन सारे विश्व को इन तथ्यों को स्वीकार करने को विवश होना पड़ेगा—यह घटना उन्हीं की सुप्रसिद्ध पुस्तक "मंगोलिया मठभूमि की आध्यात्मिक यात्रा" से उद्धृत की जा रही है।

"मैं जितनी गहराई में गया मुझे विराट विश्व की उतनी प्रगाढ़ अनुभूति होती गई और मैं अनुभव करता गया कि व्यक्ति सचेतन जीव है और उसी चेतना का समष्टि रूप परमात्मा—यद्यपि मैं उस छोर तक नहीं पहुँच सका। चार दिन तक लगातार वैसी ही योग निद्रा में प्रकाश की गति से ब्रह्मांड की जिस सीमा तक जा सकता था, उससे विराट की अनुभूति हुई; पर संसार का विस्तार तो

करोड़ों प्रकाश वर्षों का है उसे इस स्थूल देह से प्राप्त कर सकना कहाँ संभव था ? मैंने मृत्यु की वह विकराल नदी देखी, जिसमें संसार में जन्मे जीव डूबते-उतराते रहते हैं। जैसे-जैसे गहराई बढ़ी गतियाँ निश्चेष्ट और ध्वनियाँ शांत होती जा रही थीं, नीरवता और नीलेपन की ओर बढ़ते हुए मुझे अलौकिक अनुभूतियाँ हुईं, जिनका शब्दों में वर्णन कर सकना कठिन है, क्योंकि वह उपमाएँ धरती पर हैं नहीं, जो वस्तुएँ अदृश्य हों उनका परिचय उपमाओं से ही दिया जा सकता है, उपमाएँ न हों तो वह विराट कैसे समझाया जा सकता है ?"

"अब मैं वापस लौटता हूँ तो उसी क्रम से अनेक चित्र और दृश्य देखते-देखते फिर एक बार अपनी जन्मभूमि अरब के उस मकान में आकर विचार ठहर जाता हूँ, जहाँ कुछ दिन पूर्व मैं अपनी माँ, पत्नी और बच्चों के साथ रहता था। उसकी एक-एक घटना को मैंने देखा। यह घटनाएँ ही मेरे द्वारा देखे गये अब तक के सभी दृश्यों की सत्यता का प्रमाण हैं, क्योंकि इस जीवन की घटनाओं की सत्यता असत्यता पर तो कोई शंका नहीं ही हो सकती मैंने आज की स्थिति में भी अपनी पत्नी को देखा और अनुभव किया—मनुष्य की उस दुर्बलता को जो वह यह मानकर किया करता है कि मुझे तो कोई देख नहीं रहा। पर अनुभव करता हूँ कि मनुष्य हजार कोठरियों के अंदर छिपा हो तो भी वह हजार आत्माओं द्वारा और परमात्मा द्वारा देखा जाता रहता है।"

"धीरे-धीरे मेरी निद्रा समाप्त हुई तब मालूम पड़ा कि चार दिन में कितने विस्तृत जीवन के दृश्य देख आया, अब तो यही लगता है कि संसार में काल से अतीत, ब्रह्मांडों से भी—अतीत यह विज्ञानमय आत्मा ही सत्य है; इसीलिए अब सांसारिक भोगों की आकांक्षा को त्यागकर आत्म-साक्षात्कार के प्रयत्न में जुट गया हूँ।"

ये घटनाएँ पुनर्जन्म की मान्यता को स्पष्टतः प्रमाणित करती हैं। भारतीय धर्म शास्त्रों में पग-पग पर मरणोत्तर जीवन के तथ्य

का प्रतिपादन किया गया है। गीता में बार-बार इस बात का उल्लेख किया गया है कि शरीर छोड़ना वस्त्र बदलने की तरह है। प्राणी को बार-बार जन्म लेना पड़ता है। शुभ कर्म करने वाले श्रेष्ठलोक को—सद्‌गति को प्राप्त करते हैं और दुष्कर्म करने वालों को नरक की दुर्गति भुगतनी पड़ती है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय-
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय-
जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

—गीता २।२२

"जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र को त्याग करके नया वस्त्र धारण करता है, इससे वस्त्र बदलता है, कहीं मनुष्य नहीं बदलता, इसी प्रकार देहधारी आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर दूसरा नया शरीर धारण करती है।"

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।।

—गीता ४।५

"अर्जुन ! मेरे और तुम्हारे अनेक जन्म बीत गये हैं। ईश्वर होकर मैं उन सबको जानता हूँ, परंतु हे परंतप ! तू उसे नहीं जान सकता।"

थियासफी के जन्मदाताओं में से एक सर ओलिवर लाज ने लिखा है—"जीवित और मृत भेद स्थूल जगत तक ही सीमित है। सूक्ष्म जगत में सभी जीवित हैं। मरने के बाद आत्मा का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता। जिस प्रकार हम जीवित लोग परस्पर विचार विनिमय करते हैं, उसी प्रकार जीवित और मृतकों के बीच में आदान-प्रदान हो सकना संभव है। हमें विज्ञान के इस नये क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए और एक ऐसी दुनिया के साथ संपर्क बनाना

चाहिए, जो हम मानवी परिवार को कहीं अधिक सुविस्तृत सुखी और प्रगतिशील बना सकेंगे।

सर ऑर्थर कानन डायल भी इसी विचार के थे। वे कहते थे अपनी दुनिया की ही तरह एक और सचेतन दुनिया है, जिसके निवासी न केवल हमसे अधिक बुद्धिमान हैं वरन् शुभ-चिंतक भी हैं। इन दोनों संसारों के बीच यदि आदान-प्रदान का मार्ग खुल सके तो इसमें स्नेह-संवेदनाओं का, सुखद-सहयोग का एक नया अध्याय प्रारंभ होगा। मृतकों और जीवितों के बीच संपर्क स्थापना का प्रयास यदि अधिक सच्चे मन से किया जा सके, तो अब तक की प्राप्त वैज्ञानिक उपलब्धियों से कम नहीं वरन् बड़ी सफलता ही मानी जायेगी तथा यह भारतीय प्रतिपादन पुष्ट हो जायेगा कि जन्म और मृत्यु मात्र स्थूल जगत की घटनाएँ हैं। आत्मा "न जायते, म्रियते वा कदाचिन" आत्मा न कभी जन्म लेती है न कभी मरती है।

❑ ❑

जीवन सत्ता का चैतन्य स्वरूप

ए० एन० विडगेरी ने अपनी पुस्तक "कांटेंपोरेरी थॉट ऑफ ग्रेट ब्रिटेन" में इस बात पर चिंता व्यक्त की है कि सांसारिक अस्तित्व के संबंध में जितनी खोज की जा रही है, उतना मानवी-अस्तित्व के बारे में नहीं खोजा जा रहा है। लगता है—मानवी सत्ता, महत्ता और उसकी आवश्यकता को आँखों से ओझल ही किया जा रहा है अथवा चेतन को जड़ का अनुगामी सिद्ध किया जा रहा है। बौद्धिक प्रगति के यह बढ़ते हुए चरण हमें सुख-शांति के केंद्र से हटाकर ऐसी जगह ले जा रहे हैं, जहाँ हम यांत्रिक अथवा रासायनिक बोलने-सोचने वाले उपकरण मात्र बनकर रह जायेंगे। तब हम साधन-संपन्न कितने ही क्यों न हों—सभ्यता और संस्कृतिजन्य गरिमाओं से हमें सर्वथा वंचित ही होना पड़ेगा। जड़-जीवन के लिए बाधित की गई चेतना कितनी अपंग हो जायेगी ? जब यह कल्पना करते हैं तो प्रतीत होता है कि विकास की दिशा में चल रही हमारी दौड़, विनाश में अधिक विघातक सिद्ध होगी।

कई रूपों में हम—अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक अच्छे समय में रह रहे हैं। आज एक विधि तथा नियम का स्थिर शासन और निश्चित संविधान है। व्यक्तिगत संपत्ति एवं स्वतंत्र अभिव्यक्ति अधिक सुरक्षित है। विज्ञान की प्रगति के कारण मृत्युदर घट रही है। व्याधियों पर नियंत्रण किया जा रहा है। औसत आयु बढ़ रही है। शिक्षा का प्रसार बढ़ा है। देश-भक्ति जगी है। सुविधा-सामग्री सस्ती तथा सामान्य हो गई है। शासन की स्थापना में जनता का हाथ है। इतना सब होते हुए भी एक भारी क्षति मानवी-दृष्टिकोण का स्तर बहुत नीचा गिर जाने की हुई है। आज

सर्वाधिक ज्ञानी, सर्वाधिक धनवान और सर्वाधिक सामर्थ्यवान लोगों का दृष्टिकोण भी संकीर्ण और स्वकेंद्रित हो रहा है। वर्तमान से आगे की उनकी चिंताएँ तथा रुचियाँ जाती रही हैं। आत्मा के संबंध में सोचने के लिए उसके पास समय नहीं और न यह सूझ पड़ रहा है कि मानव-जाति का भविष्य बनाने के लिए—बिगाड़ को रोकने के लिए क्या-क्या कुछ किया जा सकता है ?

खोज और प्रगति के लिए मात्र भौतिक-क्षेत्र में ही अपने को अवरुद्ध कर लेना हमारे लिए उचित न होगा। यह और भी अधिक आवश्यक है कि जिस जीवधारी के लिए प्रकृति की शक्तियों को करतलगत करके विपुल सुविधा साधन जुटाये जा रहे हैं, उसकी अपनी हस्ती क्या है ? इस पर भी विचार किया जाये और यह भी खोजा जाये कि जीवन-सत्ता का विकास-विस्तार किस हद तक सुख-शांति की आवश्यकता पूर्ण कर सकता है। विज्ञान का यह पक्ष भी कम उपयोगी और कम महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाना चाहिए।

अभावों और असुविधाओं से लड़ने और प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने के लिए जीवधारी की संकल्प शक्ति को प्रखर बनाया जाना चाहिए। साधनों की बहुलता तो मनुष्य को अकर्मण्य और अशक्त बनाती चली जायेगी। प्रगति का मूल आधार विचार-प्रवाह एवं संकल्प-बल ही रहा है। जीवधारियों की प्रगति का इतिहास इन्हीं उदाहरणों से भरा पड़ा है।

सृष्टि के आरंभ में बहुकोषीय जंतुओं की बनावट बहुत ही सरल थी। स्पंज, हाइड्रा, जेलीफिश, कोरल, सी० ऐनीमोन आदि ऐसे ही बहुकोषीय जीव थे। इनके आहार और मल-विसर्जन के लिए शरीर में एक ही द्वार था। इसके बाद क्रमशः सुधार होता चला गया। आहार और मल-विसर्जन के लिए दो द्वार खुले। फिर हड्डियाँ विकसित हुईं। मेरुदंड बने, बिना खोपड़ी वाले जानवर धीरे-धीरे खोपड़ी वाले बने। जलचरों ने थल में रहना सीखा। फिर तो कुछ हवा तक उड़ने लगे। यही विकास क्रम उद्भिज, स्वेदज,

अंडज और जरायुज प्राणियों में अग्रगामी हुआ। स्तनपायी जीवों की काया जैसे-जैसे बुद्धिमान होती गई, वैसे ही वैसे उनमें अनेक प्रकार की शक्तियों और विशेषताओं का विस्तार हुआ। तदनुसार ही उनकी इंद्रियों की क्षमता एवं अवयवों की संरचना परिष्कृत होती चली गई। इसी लंबी मंजिल को पार करते हुए जीवन आज की स्थिति तक बढ़ता चला आया है।

विकासवाद के अनुसार दुनिया के प्राचीनतम और सर्वोत्तम जीव प्रोटोजोवा वर्ग के हैं। इन जीवों का शरीर एक कोषीय होता है। उदाहरण के लिए अमीबा, यूग्लोना, पैरामीसियम, वर्टीसेला आदि का आरंभ एक कोषीय-जीव के रूप में हुआ था। पीछे इनमें से कुछ ने सुरक्षा और सुविधा के लिए परस्पर मिल-जुलकर रहना आरंभ कर दिया। बालकाक्स नामक जीव छोटी-छोटी कॉलोनी बनाकर रहने लगे। इनने अपने-अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व बाँटे और मिल-जुलकर रहने के लिए आवश्यक व्यवस्था क्रम का सूत्र-संचालन किया। उनमें से कुछ आहार जुटाने कुछ वंश-वृद्धि करने, कुछ सुरक्षा सँभालने, कुछ सूत्र-संचालन और कुछ वर्ग के लिए विविध श्रम-साधना करने में तत्पर हो गये। इसे हम आदिम-कालीन वर्ण-व्यवस्था कह सकते हैं। इस सहयोग-व्यवस्था के फलस्वरूप जीवन-विकास में तीव्र गति उत्पन्न हुई और बहुकोषीय मल्टी सेल्यूलर जंतुओं का उद्भव संभव हुआ।

सृष्टि के आदि में जीव बहुत ही छोटे एवं आकार और बनावट में बहुत ही सरल थे। धीरे-धीरे समय के साथ वातावरण की अनुकूलता की परिस्थिति में सरल से जटिल और जटिल से जटिलतम होते गये। प्रकृति की इस मौलिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सृष्टि बनी और विविधता का सूत्रपात हुआ।

सरल जीवों को जटिल जीवों में बदलने की प्रक्रिया को 'विकास' कहते हैं। इस विकासवाद को समझने के लिए विभिन्न सूत्र जो समय-समय पर वैज्ञानिकों ने अपने दृष्टिकोण से सामने रखे

उन्हें 'विकासवाद के सिद्धांत' कहते हैं। इन्हें कई वैज्ञानिकों ने विविध तर्कों, तथ्यों और उदाहरणों सहित प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है। लेमार्क और ह्यूगोडिब्राइस ने पिछली शताब्दी से इस संदर्भ में बहुत कुछ खोजा और बहुत कुछ कहा है। इस शताब्दी में चार्ल्स डार्विन ने विशेष ख्याति प्राप्त की है।

विकासवाद के इस सिद्धांत के समर्थकों में प्रसिद्ध वैज्ञानिक हीकल्स भी आते हैं कि मनुष्य शरीर का विकास एक कोषीय जीव (प्रोटोजोन) से हुआ है। पहले अमीबा, अमीबा से स्पंज, स्पंज से हाइड्रा फिर जेलीफिश मछली, मेंढक, साँप, छिपकली, चिड़िया, घोड़े आदि से विकसित होता हुआ आदमी बना। इसके लिए (१) जीवों के लिए अवशेषों, (२) विभिन्न प्राणियों की शारीरिक बनावट के तुलनात्मक अध्ययन, (३) थ्योरी ऑफ यूज एंड डिसयूज (अर्थात जिस अंग का प्रयोग न किया जाये, वह घिसता और नष्ट होता चला जाता है, उदाहरण के लिए पहले मनुष्य पेड़ों पर रहता था। उछलकर चढ़ने के लिए पूँछ आवश्यक होती है। तब मनुष्य की पूँछ थी यह इसका निशान 'टेलवरटिब्री' के रूप में अभी भी शरीर में है। पर जब मनुष्य पृथ्वी पर रहने लगा, पेड़ों पर चढ़ने की आवश्यकता न पड़ी तो पूँछ का प्रयोग भी बंद होता गया और वह अपने आप घिस गई) इन तीन उदाहरणों से यह सिद्ध किया जाता है कि मनुष्य शरीर विकसित हुआ है।

किंतु एक शरीर से दूसरे शरीर के विकास का समय इतना लंबा है कि उन परिवर्तनों को सही मान लेना बुद्धिसंगत नहीं जान पड़ता। प्रकृति के परमाणुओं में भी ऐसी व्यवस्था नहीं है कि बीज से दूसरे बीज वाला पदार्थ पैदा किया जा सके, भले ही उसके लिए भिन्न प्रकार की जलवायु प्रदान की जाये। जलवायु के अंतर से फल के रंग आकार में तो अंतर आ सकता है, पर बीज के गुणों का सर्वथा अभाव नहीं हो सकता।

"सेल (कारक) फिजियोलॉजी ग्रोथ एंड डेवलपमेंट्स" विभाग कार्नेल यूनिवर्सिटी के डायरेक्टर डॉ० एफ० सी० स्टीवर्ड ने एक प्रयोग किया। उन्होंने एक गाजर काटी। उसका विश्लेषण करके पाया कि वह असंख्य कोशिकाओं का बना हुआ है, उन सभी कोशिकाओं के गुण समान थे। उन्होंने कुछ कोशिकाओं को निकालकर काँच की नलियों में रखा। खाद्य के रूप में नारियल का पानी दिया। कोशिका जो संसार में जीवन की सबसे छोटी इकाई होती है, जिसके और टुकड़े नहीं किये जा सकते—वह इस खाद्य के संसर्ग में आते ही १ से २, २ से ४, ४ से ८ अनुपात में बढ़ने लगी और प्रत्येक कोष ने एक स्वतंत्र गाजर के पौधे का आकार ले लिया।

इस प्रयोग से दो बातें सामने आती हैं—(१) कोष अपने भीतर की शक्ति बढ़ाकर अपनी तरह के कोष बना सकते हैं, (२) किंतु नई जाति का कोष बना लेना किसी अन्य कोष के लिए संभव नहीं, यदि ऐसा होता तो नारियल के पानी के आहार के साथ गाजर का कोष किसी अन्य प्रकार के वृक्ष और फल में बदल गया होता। प्रकृति की यह विशेषता विकासवाद के साथ स्पष्ट असहमति है। एक कोषीय जीव (प्रोटोजोआ) से मनुष्य का विकास तथ्य नहीं रखता। यह सिद्धांत जोड़-गाँठ करके बनाया गया तिल का ताड़ मात्र है।

'थ्योरी ऑफ यूज एंड डिस्यूज' की बात में तो भी कुछ दम है, उससे इच्छा-शक्ति की सामर्थ्य का पता चलता है। यदि हमारे मस्तिष्क में किसी जबर्दस्त परिवर्तन की आकांक्षा हो तो निश्चय ही वह कोषों के संस्कार सूत्रों-जीन्स-कोष में बंटी हुई रस्सी की तरह का अति सूक्ष्म अवयव, जिस पर कोषों के विकास की सारी संभावनाएँ और भूत का सारा इतिहास संस्कार रूप में अंकित रहता है, को बदल सकता है। यदि संस्कार सूत्र (जीन्स) बदल जायें तो

नये बीजों में परिवर्तन आ सकता है पर यह सब चेतन इच्छा शक्ति के द्वारा ही संभव है, किसी वैज्ञानिक प्रयोग से नहीं।

उपरोक्त तथ्यों पर ध्यान देने से इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि अभाव ही नहीं, अदक्षता और असमर्थता का निराकरण भी संकल्प-शक्ति को विकसित करके ही किया जा सकता है। क्रमिक विकास खोजों से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। वे बताती हैं कि भावी-प्रगति की जो भी योजनाएँ बनाई जायें, उनमें मानवी विचारणा, भावना और आंतरिक प्रखरता को उच्चस्तरीय बनाने को सर्वोपरि प्रधानता दी जाये। मनुष्य इसी अवलंबन के सहारे अन्य जीवों की तुलना में अधिक आगे बढ़ सका है। उसके भावी मनोरथ भी इस आधार को और भी अधिक दृढ़ता के साथ अपनाने पर पूरे हो सकेंगे।

वैज्ञानिक जीव-तत्त्व को रासायनिक पदार्थ मात्र मानकर एक विचित्र उलझन में उलझ गये हैं। वे भूल जाते हैं कि रसायन की जड़ता चेतना के भीतर संकल्प शक्ति और आकांक्षाओं का विस्मयकारी प्रभाव कैसे उत्पन्न कर सकती हैं ?

जीवधारी का रासायनिक आधार—प्रोटोप्लाज्मा ही सब कुछ नहीं है। अब उनके भीतर अव्यक्त जीवन-रस—ईडोप्लाज्मा की सत्ता स्वीकार कर ली गई है। वंश परंपरा केवल रासायनिक ही नहीं है, उनके पीछे अभिरुचियाँ, आस्थाएँ, भावनाएँ और न जाने ऐसा क्या कुछ भरा हुआ है, जिसकी व्याख्या रासायनिक द्रवों के आधार पर नहीं हो सकती। चेतना की एक अतिरिक्त शृंखला की स्वतंत्र गति स्वीकार किये बिना 'ईजोप्लाज्मा' के क्रियाकलाप की व्याख्या हो ही नहीं सकती। एक ही स्थान पर जड़ और चेतन एकत्रित हो सकते हैं सो ठीक है, पर दोनों एक नहीं हैं—उनकी सत्ता स्वतंत्र है। भले ही एक-दूसरे के पूरक हों, पर इन्हें एक ही मान बैठना भूल होगी।

जीवन के व्याख्याकारों ने उसके संबंध में विविध प्रकार के मत व्यक्त किये हैं। गतिशीलता, समर्थता, चेतना, विकास की क्षमता, भोज्य पदार्थों को ऊर्जा के रूप में परिणत कर सकना, जन्म दे सकने की क्षमता आदि-आदि कितनी शर्तें जीवन-अस्तित्व के साथ जोड़ी गई हैं।

यह सारी विशेषताएँ प्रोटोप्लाज्मा में सीमित नहीं हो सकतीं, उसके लिए कुछ अतिरिक्त क्षमता की आवश्यकता है। हमारी भावी खोज और दिलचस्पी इस अद्‌भुत अतिरिक्तता पर ही केंद्रित होनी चाहिए, जो जड़ परमाणुओं के सीमित क्रियाकलाप से कहीं अधिक ऊँची है।

विज्ञानवेत्ता रासायनिक विश्लेषण से कभी आगे बढ़ते हैं तो विद्युतीय स्फुरणा के रूप में प्राण-चेतना की व्याख्या करने लगते हैं। मनुष्य शरीर में बिजली का विपुल-भंडार भरा पड़ा है। यह ठीक है और यह भी सत्य है कि मस्तिष्क से विचारों के कंपन विद्युत-प्रवाह के ही रूप में निकलते हैं और शारीरिक आंतरिक क्रिया-प्रक्रिया संपन्न करते हैं, साथ ही विश्व ब्रह्मांड में हलचल उत्पन्न करके अगणित मस्तिष्कों पर अपना प्रभाव डालते हैं और जड़ पदार्थों की दिशा मोड़ते हैं किंतु यह मान बैठना उचित न होगा कि यह बिजली बादलों में कड़कने वाली धूप—गर्मी के रूप में अनुभव आने वाली तथा बिजलीघरों में उत्पन्न होने वाली के ही स्तर की है। भौतिक-बिजली और प्राण-शक्ति में मौलिक अंतर है। प्राण के कारण शरीर और मस्तिष्क में बिजली पैदा होती है, किंतु यह विद्युत तक सीमित न होकर अनंत अद्‌भुत क्षमताओं से परिपूर्ण है।

मानवी विद्युत आकर्षण—ह्यूमन मैग्नेटिज्म का संयुक्त स्वरूप प्राण है। उसे विश्वव्यापी महाप्राण का एक अंश भी कहा जा सकता है; क्योंकि भौतिक जगत में चेतन संवेदनाओं में जो कुछ स्फुरणा रहती है, उनका समन्वित समीकरण मानवी-प्राणसत्ता में देखा जा सकता है।

'प्रोजोक्टिजम ऑफ ऐस्ट्रल बॉडी' के लेखक ने बताया है कि शरीर की स्थूल रचना अपने आप में अद्भुत है, पर यदि उसके भीतर काम कर रहे विद्युत शरीर की क्रिया-प्रक्रिया को समझा-जाना जा सके तो प्रतीत होगा कि उसमें सूर्य से तथा अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों से धरती पर आने वाली ज्ञात और अविज्ञात किरणों का भरपूर समन्वय विद्यमान है। गामा, बीटा, एक्स, लेजर, आल्ट्रा वायलेट, अल्फा वायलेट आदि जितने भी स्तर की शक्ति किरणें भूमंडल में भीतर और बाहर काम करती हैं, उन सबका समुचित समावेश मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में हुआ है। स्थूल शरीर जड़ पदार्थों के बंधनों से बँधा होने के कारण ससीम है, पर सूक्ष्म शरीर की संभावनाओं का कोई अंत नहीं। उसका निर्माण ऐसी इकाईयों से हुआ है, जिनकी हलचलें ही इस ब्रह्मांड में विविध-विध क्रिया-कलाप उत्पन्न कर रही हैं।

जीवन-तत्त्ववेत्ता ई० के० लेनकास्टर ने अधिक गहराई तक जीवन-तत्त्व की खोज करने के उपरांत उसे भौतिक-जगत में चल रही समस्त क्रिया-प्रक्रियाओं से भिन्न स्तर का पाया। उसके निरूपण के लिए जो भी सिद्धांत निर्धारित किये, वे सभी ओछे पड़े। अस्तु, उन्होंने कहा—जीवन सत्ता के बारे में मानव-बुद्धि कुछ ठीक निरूपण शायद ही कर सके। उसकी व्याख्या भौतिक-सिद्धांतों के सहारे कर सकना संभवतः भविष्य में भी संभव न हो सकेगा। जीवन एक स्वतंत्र विज्ञान है और ऐसा जिसकी नापतौल पदार्थ विद्या के वटखरों से नहीं ही हो सकेगी।

निर्जीव पदार्थ का केवल अस्तित्व है। उनमें न अनुभूति है और न जीवन। पौधों में अस्तित्व और जीवन है, पर ज्ञान का अभाव है। प्राणियों में अस्तित्व, जीवन और अनुभूति है, परंतु ज्ञान या स्वतंत्र इच्छा विकसित अवस्था में नहीं है। इसके विपरीत मनुष्य में ये सब गुण विद्यमान हैं, उसमें अस्तित्व पूर्ण जीवन, अनुभूति, ज्ञान के स्वतंत्र इच्छा शक्ति का समन्वय है, इस प्रकार

उसे चेतना के सुविकसित स्तर पर प्रतिष्ठापित किया जा सकता है।

जड़ और चेतन की आणविक हलचलों में समानता हो सकती है, पर यह किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होता कि जड़ का विकास इतना अधिक हो सके कि वह चेतना के उच्चतम स्तरों की परतें उघाड़ता चला जाय। अस्तु, हार-थककर वे अन्य प्रकार के उपहासास्पद निष्कर्ष निकालते हैं। उदाहरण के लिए केल्विन, हैमरीज, किचटर, अरहेनियस की मान्यता है कि 'जीवन किसी अन्य लोक से भूलता-भटकता पृथ्वी पर आ पहुँचा है।'

टैंडाल और पास्टयूर की मान्यता थी कि जीवन-जीवन से ही उत्पन्न हो सकता है। आरंभ में सेल अपने आप अपनी वंश वृद्धि किया करते थे, पीछे 'नर-मादा संयोग' का क्रम चला। इसी प्रकार भीतर-बाहरी अवयवों की संख्या एवं क्षमता भी क्रमशः ही विकसित हुई है। जड़ से चेतन की उत्पत्ति अथवा पदार्थ का जीवन में परिवर्तन उन्होंने अशक्य माना है। चेतना की वे स्वतंत्र सत्ता ठहराते हैं।

ब्रह्मांडव्यापी महाशक्तियों में से गुरुत्वाकर्षण की क्षमता सर्वविदित है। आकाश में समस्त ग्रह-नक्षत्र उसी के आधार पर टिके हुए हैं और जीवित हैं।

इलैक्ट्रोमेग्नेटिक शक्ति (विद्युत चुंबकीय क्षमता) अगणित भौतिक प्रक्रियाओं का नियंत्रण करती है। प्रकाश, ताप, ध्वनि, विद्युत, रासायनिक परिवर्तन आदि के जो क्रियाकलाप इस जगत में चल रहे हैं, उनके मूल में यही शक्ति काम कर रही है। ईथर अपने विभिन्न आकार-प्रकारों में वस्तुओं पर शासन स्थापित किये हुए है।

यह विद्युत चुंबकीय क्षमता, मात्र जड़ नहीं है। यदि वह जड़ ही होती तो अणु-परमाणुओं की संरचना में जो अद्‌भुत व्यवस्था दिखाई पड़ती है, उसके दर्शन नहीं होते। साथ ही चेतन प्राणियों में दूरदर्शिता, आकांक्षा, भावना जैसी कोई विशेषता न होती और न

किसी जीव में कोई ऐसी अतींद्रिय-क्षमता पाई जाती, जिसका जड़-चेतन के साथ कोई सीधा संबंध नहीं हो।

अणु-अणु में संव्याप्त विराट चेतना

योग वशिष्ठ में बताया है—

परमाणु निमेषाणा लक्षांशकलनास्वपि।
जगत्कल्प सहस्त्राणि सत्यानीव विभान्त्यलम्।।
तेष्वप्यन्तस्तथै वातः परमाणु कणं प्रति।
भ्रान्तिरेव मनन्ताहो इयमित्यवभासते।।

—योग वशिष्ठ ३।६२।१-२

अणावणावसंख्यानि तेन संति जगन्ति रवे।
तेषान्तान्व्यवहारो घान्संख्यातुं क इव क्षमः।।

—योग वशिष्ठ ६।२।१७६।६

हे राम ! प्रत्येक परमाणु के एक क्षुद्र टुकड़े के भी छोटे-लाखवें भाग के भीतर सहस्रों विश्व स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। उन परमाणुओं में से प्रत्येक के भीतर भी वैसा ही दृश्य जगत् विद्यमान है। यह आश्चर्य और अनहोनी जैसी लगती है पर यह सत्य है राम ! आकाश के अणु-अणु में सुव्यवस्थित संसार समासीन है, उनके समाचार कौन जानता है ?

ज्ञान, शक्ति, प्रकाश, रूप यह चेतना ही ब्रह्म है, उसे जानना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य बताया है, शास्त्रकार ने। किंतु हमारे सामने पदार्थ का एक विराट संसार दृष्टिगोचर हो रहा है, हम उसमें भूल जाते हैं और विद्युत को, वैज्ञानिक मान्यताओं को सत्य मानकर अंतःचेतना की उपेक्षा करने लगे हैं।

विज्ञान शास्त्रकार की उपरोक्त धारणा को स्थिर करता है, उसे सत्य सिद्ध करता है। सूक्ष्मदर्शी निरीक्षण (माइक्रास्कोपिक इंस्पेक्शन) से ज्ञात हुआ है कि मनुष्य का शरीर भी छोटे-अदृश्य परमाणुओं से बना हुआ है, उन्हें कोश (सेल) कहते हैं। कोशाओं की

रचना प्याज के छिलकों की तरह (फैब्रिक फावर्ड सेल्स टिसू) एक विशेष प्रकार की होती है, प्याज के छिलके की एक कोशिका अपनी पूरी प्याज की गाँठ की तरह ही परत के भीतर परत वाली होती है। इस तरह सूक्ष्म वस्तु के भीतर भी एक नियोजित चेतना काम कर रही है।

पेड़-पौधों की पत्तियाँ भी साँस लेती हैं। साँस लेने की क्रिया वह पत्तियाँ आगे निकले हुए नुकीले भाग से करती हैं। सबसे आगे का नुकीला कोष बहुत ही छोटा होता, वह आकाश से वायु खींच-खींचकर पहुँचाता है। वायु में अकेले हवा नहीं होती, उसमें प्रकाश के कण भी होते हैं, इसी वायु और प्रकाश कणों से वृक्ष-वनस्पतियों के भीतर ठीक वैसी ही चेतनता काम करती रहती है, जिस तरह मनुष्य शरीर में श्वास-प्रश्वास क्रिया से ही सारे क्रिया-कलाप चलते रहते हैं।

छोटे से छोटे कोश में वायु, जल, प्रकाश, खनिज, लवण, धातुएँ आदि विभिन्न वस्तुएँ जिस-जिस मात्रा और अनुपात में होती हैं, उसी अनुपात में उनका स्वरूप बनता-बिगड़ता रहता है और इस तरह प्रकृति में एक सुव्यवस्थित हलचल दिखाई देती रहती है। अणुओं के भीतर की यह हलचल विराट, ब्रह्मांड में हो रही हलचलों की प्रतिच्छाया होती है। कुछ ऐसे तारों का पता लगाया गया है, जो कालांतर में अपनी चमक बदलते रहते हैं। पृथ्वी में होने वाले ऋतु-परिवर्तन को तो हम स्पष्ट देखते और अनुभव करते हैं।

कुछ विशेष प्रकार के नक्षत्रों के अध्ययन से पता चला है कि आगे उनकी गतिविधियाँ क्या होंगी, यह निश्चित रूप से जाना जा सकता है। आकाश में कुछ ऐसे भी तारे हैं, जिनको हम देख भी नहीं सकते। पर वे ध्वनि कंपनों से अनुभव में आते हैं। वैज्ञानिकों ने इन तारों की खोज इसी आधार पर की है। जब कोई वस्तु हवा में तीव्रता से कंपन करती है, तब उसकी दबाव तरंगें भी तीव्रता से उत्पन्न होती हैं। जब यह तरंगें कान से कुछ निश्चित परिस्थितियों

में टकराती हैं, तभी उस ध्वनि का अनुभव होता है और इसी तरह अनेक अदृश्य तारों के अस्तित्व का पता लगाया गया है।

विज्ञान के अनुसार यह ध्वनि, यह परिवर्तनशीलता और यह विराट दृश्य परमाणु में विद्यमान हैं, तब फिर हम उस परमाणु की मूल सत्ता को ही क्यों न जानें ? ताकि उसे जानकर विश्व-ब्रह्मांड को जान लें। योगाभ्यास हमें उसी सूक्ष्म-दर्शन की प्राप्ति कराता है। इस विद्या के द्वारा मनुष्य परमाणविक चेतना में विश्वंभर शक्ति और उसके विराट स्वरूप के दर्शन कराता है। अतः सत्ता के चैतन्य स्वरूप को समझना सर्वोपरि आवश्यकता है।

कोशिका की सत्ता का मूल स्वरूप क्या है ?

हमारे शरीर का प्रत्येक भाग कोशिकाओं से बना है। एक इंच जगह में छह हजार कोशिकाएँ समा जाती हैं। प्रत्येक कोशिका के भीतर प्रोटोप्लाज्म नामक पतला चिकना पदार्थ भरा रहता है। यह प्रोटोप्लाज्म वायु खींचता व कार्बन (दूषित वायु) बाहर फेंकता है। इस तरह हमारे शरीर के लाखों-करोड़ों प्रोटोप्लाज्म हमारी साँस के साथ साँस लेते हैं। प्रोटोप्लाज्म में एक "न्यूक्लियस" होता है। वैज्ञानिक उसे ही जीवन का आधार मानते हैं। नई कोशिकाएँ बनाने की उसी में क्षमता होती हैं। जब न्यूक्लियस निर्बल होने लगता है, तो प्रोटोप्लाज्म भी सूखने लगता है और एक दिन प्रोटोप्लाज्म से मूल चेतना गायब हो जाती है। वह कहाँ चली जाती है ? यह अभी वैज्ञानिक नहीं समझ सके हैं।

वीर्य का प्रत्येक 'सेल' पिता के और माता की प्रत्येक डिंबकोष (ओवम) माता के सभी गुणों को धारण किये रहती है। सूक्ष्म रोगों तक का वीर्य के प्रत्येक 'सेल' में प्रभाव होता है। 'सेल्स' के 'नाभिक' में अचेतन के समस्त भावों का प्रभाव रहता है। यानी व्यक्ति के समस्त संस्कारों की छाप प्रत्येक सेल में होती है।

संस्कारों के इतने सूक्ष्म 'सेल्स' में भी पूर्णतः विद्यमान होने और उनका एक शरीर से दूसरे शरीर में संप्रेषण संभव होने का

यह सिद्धांत स्पष्टतः पुनर्जन्म के सिद्धांत की भी युक्ति युक्तता प्रतिपादित करता है। जिस तरह वीर्य के 'सेल' के साथ सूक्ष्म संस्कार जाते हैं, उसी तरह जीवात्मा के साथ भी वे बने रहते हैं और पुराने शरीर से नये शरीर में जाते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों की मान्यता है कि संभवतः मृत्यु के समय शरीरस्थ 'प्रोटोप्लाज्म' शरीर से पृथक हो मिट्टी-राख आदि में मिल जाते हैं। वनस्पतियों, फसलों, पेड़-पौधों की पत्तियाँ, फूलों और फलों दानों आदि में वे सन्निहित रहते हैं। इन पत्तियों, फूलों, फलों-अनाज आदि को गुण-साम्य के अनुरूप भेड़-बकरी, कुत्ता, बैल-गाय-भैंस, कौआ-तोता, मनुष्य आदि खाते हैं और उनके द्वारा 'प्रोटोप्लाज्म' शरीर के भीतर पहुँच जाते हैं यही प्रोटोप्लाज्म 'जीन्स' में समाहित रहते हैं और नये शिशु के साथ पुनः जन्म लेते हैं। इस प्रकार पूर्व शरीर के प्राणी का प्रोटोप्लाज्म ही नये शरीर के साथ जन्म लेता है।

शिशु के स्मृति पटल में पहुँचकर जब कभी कोई 'प्रोटोप्लाज्म' जागृत हो उठता है, तो उससे संबंधित पुनर्जन्म की घटनाएँ भी याद आ जाती हैं, इस तरह पुनर्जन्म प्रोटोप्लाज्म का होता है, आत्मा का नहीं। लेकिन इधर आत्मा संबंधी खोजें वैज्ञानिकों को अपना पूर्वाग्रह परिवर्तित करने को प्रेरित कर रही हैं।

खोज चेतन आत्मा की जड़ उपकरणों के माध्यम से

विलियम मैक्डूगल ने आत्मा के बारे में तरह-तरह से वैज्ञानिक खोज की है। उन्होंने एक ऐसा तरांजू तैयार किया, जो पलंग पर पड़े रोगी का ग्राम के हजारवें हिस्से तक वजन ले सकै। उस पर एक मरणासन्न रोगी को लिटाया। कपड़े सहित पलंग का वजन, फेफड़े की साँसों का वजन भी लिया और दी जाने वाली दवाईयों का भी। रोग जब तक जीवित रहा, तराजू की सुई एक ही स्थान पर टिकी रही। प्राण निकलने के क्षण सुई सहसा पीछे हटी और टिक गई। वह १ औंस यानी आधा छटाँक वजन कम बता

रही थी। फिर कई रोगियों पर यह प्रयोग किया गया। एक चौथाई से डेढ़ औंस तक वजन में कमी पाई गई। इससे मैक्डूगल ने निष्कर्ष निकाला कि शरीरस्थ कोई सूक्ष्म तत्त्व ही जीवन का आधार है। विभिन्न निरीक्षणों, प्रयोगों द्वारा उन्होंने उसका सामान्य औसत भार भी निकाला।

डॉ० गेट्स ने कालापन लिये लाल सी यानी वनफशई रंग की किरणें खोजी हैं। इन किरणों का प्रकाश मनुष्य आँख से नहीं देख सकता पर कमरे की दीवारों पर रोडापसिन नामक पदार्थ का लेप कर उस पर ये किरणें फेंकी गईं, तो उसका रंग बदल गया। ये किरणें हड्डी, लकड़ी, पत्थर, धातु को पार करके चमकने लगती हैं, पर इन किरणों को दीवार पर डाला जाये और बीच में कोई मनुष्य आ जाये तो दीवार पर उसकी छाया दीखेगी यानी ये किरणें जीवित प्राणी का शरीर भेद नहीं सकतीं।

डॉ० गेट्स ने इन प्रकाश—किरणों को तत्काल मरे पशुओं की आँखों से प्राप्त किया है। एक मरणासन्न चूहे को गिलास में रखकर ये किरणें फेंकी गईं। दीवार पर उस चूहे की छाया पड़ी। पर जैसे ही चूहे के प्राण निकले, एक छाया गिलास से निकली और मसाला लगी दीवार की तरफ लपकी। वह ऊपर तक गई और लुप्त हो गई। अब दीवार पर चूहे पर चूहे की छाया नहीं थी यानी चूहे का मृत शरीर उन किरणों के लिए पारदर्शी हो चुका था। परीक्षा के समय दो अध्यापक भी मौजूद थे। उन्होंने भी मृत्यु-क्षण में छाया को ऊपर-नीचे आते व सहसा लुप्त होते देखा। अब डॉ० गेट्स का प्रयास है कि यह जाना जाये कि छाया जब शरीर से निकलती है—लुप्त होने के लिए, तो उस समय उसमें ज्ञान रहता है या नहीं ?

इन किरणों के लिए चूहा जीवित अवस्था में पारदर्शी क्यों नहीं था ? गेट्स ने उत्तर के लिए गैलवानोमीटर से उन किरणों की

शक्ति तथा मानवीय देह में संचालित विद्युत तरंगों की शक्ति को मापा व बताया कि शारीरिक बिजली की शक्ति अधिक है।

जीवित स्थिति में शारीरिक विद्युत प्रवाह होने से ये किरणें शरीर से टकराहट लौट जाती हैं; शारीरिक विद्युत प्रवाह उन्हें धकेल देता है। निष्प्राण होने पर ऐसी कोई बाधा बचती नहीं और किरणें शरीर को भेद जाती हैं।

डॉ० गेट्स शरीर की विद्युत शक्ति को ही आत्मा की प्रकाश—शक्ति मानते हैं।

फ्रांस के डॉ० हेनरी वाराहुक ने अपनी मरणासन्न पत्नी एवं बच्चे पर प्रयोग कर मृत्यु के फोटो लिये, तो कुछ रहस्यमय किरणों के चित्र प्राप्त हुए। डॉ० एफ० एम० म्ट्रा ने तो इस तरह का सार्वजनिक प्रदर्शन ही किया, जिसमें अखबारों के प्रतिनिधियों ने भी चित्र लिये और रहस्यमय-किरणों के चित्र प्राप्त किये।

अमरीका में बिलसा क्लाउड चेंबर द्वारा आत्मा के अस्तित्व संबंधी अनेक प्रयोग किये गये हैं। यह चेंबर एक खोखला पारदर्शी सिलेंडर है। इसके भीतर से हवा पूरी तरह निकालकर, भीतर रासायनिक घोल पोत देते हैं। इससे सिलेंडर में एक मंद प्रकाश पूर्ण कुहरा छा जाता है। इस कुहरे से यदि एक भी इलेक्ट्रोन गुजरे तो फिट किये गये शक्ति संपन्न कैमरों द्वारा उनका फोटो ले लिया जाता है। सिलेंडर में होने वाली हर हलचल का चित्र आ जाता है।

इस चेंबर में जीवित चूहे और मेंढक रखकर बिजली के करेंट से उनको प्राणहीन किया गया। देखा गया कि मरने के बाद चूहे या मेंढक की हूबहू शक्ल उस रासायनिक कुहरे में तैर रही है। उस आकृति की गतिविधियाँ संबंधित प्राणी के जीवन काल की ही गतिविधियों के अनुरूप थी। क्रमशः यह सत्ता धुँधली होती जाती है फिर कैमरे की पकड़ से बाहर चली जाती है।

लंदन के प्रसिद्ध डॉ० डब्ल्यू० जे० किल्लर ने एक पुस्तक लिखी है—'दि ह्यूमन एडमॉस्फियर'। इसमें उन्होंने अनेक

महत्त्वपूर्ण तथ्य गिनाकर भौतिक विज्ञान को इन चुनौतियों से जूझने का आह्वान किया है। एक तथ्य यह है—अपने सेंट जेम्स अस्पताल में डॉ० किल्लर ने रोगियों के परीक्षण के दौरान एक दिन खुर्दबीन पर एक दुर्लभ रासायनिक रंग के धब्बे देखे। यह रंग आया कहाँ से ? वे व्यग्रता से खोज करने लगे।

दूसरे दिन इसी रासायनिक रंग की लहरें उन्होंने एक रोगी की जाँच करते समय शीशे से देखी और चौंक पड़े। एक रोगी के सभी कपड़े हटा दिये फिर देखा—रोगी के छह-सात इंच की परिधि में वही लहरें एक आभामंडल बनाये हैं। वह प्रकाश किसी भी शारीरिक अस्वस्थता का परिणाम नहीं था। प्रकाशमंडल मंद पड़ रहा था। डॉ० किल्लर सतर्क हो गये। रोगी मरणासन्न था। जैसे-जैसे प्रकाशमंडल मंद पड़ता गया, रोगी शिथिल होता गया। सहसा वह प्रकाश जाने कहाँ खो गया। डॉ० किल्लर ने देखा, रोगी निष्प्राण हो चुका था। अब उस ठंडे शरीर के आस-पास कहीं कोई रासायनिक रंग शेष नहीं रहा था। इस घटना की रिपोर्ट छपी तो लोग चकित रह गये।

वार्कले, केलीफोर्निया (अमरीका) में कार्यरत डॉ० लीसनेला और उनके साथियों ने इस विषय पर न केवल खोज की है, बल्कि 'साइकोसिस और ट्रान्सेन्डेन्स ?' शीर्षक एक लेख में 'द रिबर्थ प्रोसेस' (पुनर्जन्म प्रक्रिया) की गहरी छानबीन व दस्तावेजों से भरी व्याख्या भी प्रस्तुत की है।

डॉ० सनेला के समूह ने सीजीफ्रेनिया मेनिअक डिप्रेसीन (एक अवधि के लिए मानसिक उन्माद की स्थिति आ जाना फिर सामान्य मनः स्थिति, इसी तरह अनवरत क्रम) तथा मानसिक असंतुलन जन्य अन्य रोगों के रोगानुसंधानों का विवरण देते हुए यह तथ्य प्रदर्शित किया है कि उनमें से अधिकांश उच्चतर मानसिक विकास की प्रक्रिया वाले वे लोग हैं, जो विराट आंतरिक शक्तियों के अपरिपक्व तथा असंतुलित प्रस्फुटन के कारण इस स्थिति में पहुँचे

हैं। सनेला—समूह के अनुसार विकास की यह स्थिति वस्तुतः मानसिक रोग नहीं है, बल्कि 'पुनर्जन्म-प्रक्रिया' की ओर यह गति मात्र है।

पहले विज्ञान पदार्थ की चार अवस्थाएँ ही जानता था—ठोस द्रव, गैस और प्लाज्मा। प्लाज्मा मात्र बाह्य अंतरिक्ष में विद्यमान है, किंतु भौतिकी प्रयोगशालाओं में भी उसे अत्युच्च तापमान पर उत्पादित किया जा सकता है।

१६४४ में सोवियत भौतिकी-विद् व्ही० एस० ग्रिश्चेन्को ने पहली बार पदार्थ की पंचम अवस्था—"जैव प्लाज्मा" की खोज की जो कि सभी जीवधारियों में विद्यमान प्राण ही है।

प्रो० ग्रिश्चेन्को के अनुसार जैव प्लाज्मा में इयान्स, स्वतंत्र इलेक्ट्रान और स्वतंत्र प्रोटान होते हैं, जो कि नाभिक से स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं। यह तीव्र संचालक है और दूसरे अवयवों या जीवधारियों में शक्ति के संग्रहण, रूपांतरण तथा संवहन में सक्षम होता है। यह मनुष्य के मस्तिष्क में और सुषुम्ना नाड़ी में एकत्रित रहता है। यह अत्यधिक दूरियों को तीव्र गति से लाँघ सकता है और इस तरह टेलीपैथी, मनोवैज्ञानिक और मनोगति की प्रक्रियाओं से संबंधित है।

इस अनुसंधान के बाद सोवियत विज्ञान ने तेजी से इस क्षेत्र में प्रगति की है। अपने प्रयोगों के दौरान रूसियों ने अत्यधिक विकसित उपकरणों का उपयोग किया। उच्च वोल्टेज वाली फोटोग्राफी की प्रक्रिया, जिसमें इलेक्ट्रानिक माइक्रोस्कोप भी शामिल हो, क्लोज-सर्किट टेलीविजन तथा मोशन-पिक्चर, टेक्नीक का उपयोग, जिसे एस० डी० कीर्लिग्रन और व्ही० के० कीर्लियन ने विकसित किया है। रेडिएशनफील्ड फोटोग्राफी को रूसी "कीर्लियेन औरा" कहते हैं। इनके द्वारा प्रो० ग्रिश्चेन्को की 'बायो-प्लाज्मा' और उसके भारतीय समतुल्य 'सूक्ष्म-शरीर' तथा उसमें परिव्याप्त प्राण-आवरण की अवधारणाओं की पुष्टि होती है। इस तरह यह

अज्ञात ईथर तत्त्व के जगत में वैज्ञानिकों द्वारा अति महत्त्वपूर्ण भौतिक आधारों की खोज है।

सोवियत रूस के प्रसिद्ध अंतरिक्ष केंद्र के पास आल्माअता में कज़ाकिस्तान राज्य विश्वविद्यालय की जैव विज्ञान प्रयोगशाला के निर्देशक डॉ० द्वी० एम० इन्युशियन ने अपने एक शोधपत्र में कहा है कि उच्चस्तरीय विशेषीकृत तथा क्लिष्ट विधियों के द्वारा अत्युच्च संवेदना वाली कीर्लियन—फोटोग्राफिक प्रक्रियाओं द्वारा पहले खरगोश और बाद में मनुष्यों के फोटोग्राफ लिए जाने पर, सोवियत वैज्ञानिक 'बायोप्लाज्मा' तथा शरीर के चारों ओर उसकी परिव्याप्ति (झीनी चादर) की फोटो लेने में सफल रहे हैं। कीर्लियन फोटोग्राफों से पता चलता है कि जैविक—प्रकाश (चमक) का कारण जैव-प्लाज्मा है। इनका आधार होता है और इनमें ध्रुवीय छोर होते हैं।

प्रयोगों से प्रमाणित होता है कि—

(१) प्लाज्मा मस्तिष्क में सर्वाधिक सघन है।

(२) सुषुम्ना नाड़ी और उसकी रासायनिक कोशिकाएँ बायोप्लाज्मा गतिविधियों के केंद्र हैं।

(३) यह अँगुलियों के छोर तथा सूर्य-चक्र की पीठ में अधिक सुदृढ़ होता है।

(४) रक्त की तुलना में स्नायुओं के केंद्रों में अधिक प्लाज्मा होता है।

नेत्र तीव्र विकिरण के स्रोत हैं। (इनसे पता चलता है कि हिप्नोटिस्ट क्यों अपने सबजेक्ट की आँखों में गहराई तक झाँकते हैं और इस तरह अपने विचारों से उसे प्रभावित करते हैं।)

डॉ० इन्सुशियन स्पष्ट करते हैं—अपनी प्रयोगशाला में हमने लगातार प्रयोग किये हैं, यह जानने के लिए कि क्या बायो-प्लाज्मा का (प्राण शक्ति का) वास्तविक अस्तित्व है ? हम जानते हैं कि

प्रत्येक जीवधारी के पास एक ऐसी प्रणाली है, जो शक्ति का विकरण करती है और एक क्षेत्र (सूक्ष्म शरीर) तैयार करती है।

किंतु हम जीवधारियों की शक्ति-प्रक्रिया को बहुत कम जानते हैं, विशेषकर टेलीपैथी में, जबकि दो व्यक्ति एक ऐसी दूरी पर रहते हुए एक साथ परस्पर संबद्ध क्रियाएँ करते हैं कि उसकी प्रक्रिया परंपरागत साधनों द्वारा ठीक से समझाई नहीं जा सकती।

एक जीवित देहधारी को एक जैविक क्षेत्र कहा जा सकता है, जिसमें एक-दूसरे को प्रभावित करने वाली शक्तिधाराओं का अस्तित्व हो। जैविक क्षेत्रों का स्पष्ट रूपाकार है और ये विभिन्न भौतिक क्षेत्रों द्वारा विनिर्मित हैं—इलेक्ट्रोस्टेटिक, इलैक्ट्रोमैग्नेटिक, हाइड्रोडायनमिक तथा संभवतः ऐसे अनेक क्षेत्र भी जिनके बारे में हम अच्छी तरह जानते नहीं, बायो-प्लाज्मा इनमें से किसी एक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है।

मनुष्य की विभिन्न शरीर-क्रियावैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं की जाँच की गई। देखा गया कि सुषुम्ना नाड़ी का केंद्र, अनेक स्नायविक कोशिकाओं के गुच्छों के साथ (चक्र) जैव प्लाज्मीय सक्रियता का केंद्र है। बायो-प्लाज्मिक सक्रियता 'मूड' पर निर्भर देखी गई। उदाहरणार्थ कलाकार किसी कलाकृति के बारे में सोचते समय उच्चस्तरीय चेतना की स्थिति में थे। यानी उनका 'कोरोना' अत्यंत प्रकाशवान था, जबकि कुंठित, तनावग्रस्त व्यक्ति का 'कोरोना' बहुत पतला था तथा उसमें कई काले धब्बे थे।

शरीर में जैव-प्लाज्मीय (बायो-प्लाज्मिक) क्षेत्र की सापेक्ष स्थिरता के बावजूद बायो-प्लाज्मा के द्वारा शक्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंश अंतरिक्ष में विकीर्ण होता है। यह माइक्रोस्टीमर्स के रूप में हो सकता है या फिर बायोप्लाज्माइड्स के रूप में। माइक्रोस्टीमर्स हवा के द्वारा बनने वाले 'बायो-प्लाज्मिक' अवयवों के स्रोत हैं, जबकि बायो-प्लाज्माइड्स बायो-प्लाज्मा के वे टुकड़े हैं, जो

शरीर से अलग हो गये हैं यानी वे कास्मिक-चेतना को मानवीय-चेतना से जोड़ने के स्रोत हैं।

एक अन्य प्रख्यात वैज्ञानिक जर्मनी के प्रो० विल्हेमरीच भी प्राण शरीर के अस्तित्व में भारतीय सिद्धांत का मानवीय देह की एक प्रतिकृति के अस्तित्व के रूप में समर्थन करते हैं। वे इसे 'आर्गोन' कहते हैं, यानी एक जैव विद्युतीय शक्ति जो नीले रंग की है।

सोवियत खोज को अमेरिकन वैज्ञानिकों के सामने प्रस्तुत करते हुए, शैला आस्ट्रेंडर तथा लिन स्क्रोडर ने लिखा है, "सोवियतों को साक्ष्य मिल गया प्रतीत होता है कि समस्त जीवधारियों में शक्ति का कोई साँचा, एक प्रकार का अदृश्य शरीर अथवा भौतिक शरीर को परिवृत्त करने वाला कोई प्रकाश पिंड होता है ।"

इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप की आँखों से इन वैज्ञानिकों ने प्रशांत उच्चस्तरीय 'फ्रीक्वेन्सी' पर कोई ऐसी वस्तु निरंतर 'डिस्चार्ज' होते देखी है, जो पहले 'क्लेयर वोवेंट' (भविष्यदृष्टा) ही देख पाते थे। उन्होंने जीवित देह में एक जीवित प्रतिकृति को गतिवान देखा है

यह प्रतिकृति क्या है ? यह एक समग्र एकीभूत देह ही है, जो एक इकाई की तरह काम करती है। यह अपने स्वयं के विद्युत चुंबकीय क्षेत्रों का अतिक्रमण करती है तथा जैव-वैज्ञानिक क्षेत्र का यह आधार है।

यह जैविक प्रकाश पिंड, जो कीर्लियन चित्रों में देखा जा सकता है, बायो-प्लाज्मा के द्वारा विनिर्मित है। कजाक वैज्ञानिकों के अनुसार इस कंपनशील, रंगीन, शक्ति—शरीर की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसकी एक विशिष्ट स्थानिक संरचना है। उसमें आकार है तथा वह पोलराइड भी है (यानी उसमें छोर भी हैं)।

यह हैं कुछ निष्कर्ष जो पदार्थ विज्ञान के आधार पर मरणोत्तर जीवन की संभावनाओं पर प्रकाश डालते हैं और शरीर

त्यागने के उपरांत भी जीवात्मा का अस्तित्व बना रहने की मान्यता का समर्थन करते हैं। किंतु यह यों तो तथ्य का एक छोटा और भोंड़ा पक्ष है। वस्तुतः उस संदर्भ में दूसरे आधार पर नये सिरे से विचार करना होगा। विशाल ब्रह्मांड का लघुतम घटक अणु—अंड है। दोनों के सघन समन्वय पर ही इस संसार की विविध हलचलों की व्याख्या विवेचना संभव होती है। भौतिकी का सुविस्तृत शास्त्र इन्हीं शोध प्रयोजनों में संलग्न रहता है। यह विश्व का स्थूल आवरण हुआ। उसका प्राणतत्त्व उस सूक्ष्म सत्ता के रूप में जाना जाता है, जिसे ब्रह्मांडीय चेतना अथवा ब्रह्म तत्त्व कहते हैं। विराट ब्रह्म का लघुतम घटक जीव है। जीव और ब्रह्म के बीच होने वाले आदान-प्रदान पर ही चेतनात्मक हलचलों का आधार खड़ा है। जीव ब्रह्म में से ही उदय होता है और अंततः उसी में उसे लय भी होना पड़ता है। भौतिकी को आवरण विवेचना कहा गया है और ब्रह्म-विद्या को चेतना का तत्त्व दर्शन। दोनों के अपने-अपने क्षेत्र हैं और अपने-अपने प्रयोजन। जिस दिन भौतिकी की तरह ब्रह्मविद्या का भी सुनिश्चित एवं प्रामाणिक शास्त्र बनकर तैयार हो जायेगा, उसी दिन जीवसत्ता और ब्रह्म-सत्ता का पारस्परिक संबंध संपर्क ठीक प्रकार समझा जा सकेगा। ऋषियों ने अपने ढंग से दार्शनिक पृष्ठभूमि पर ब्रह्म-विद्या का ढाँचा खड़ा किया था। आज उन निष्कर्षों का समर्थन प्रत्यक्षवादी आधारों पर किये जाने की युग अपेक्षा है। सत्य तो सत्य ही है। तथ्य तो तथ्य ही है। उन्हें इस आधार पर भी सिद्ध किया जा सकता है और उस आधार पर भी। ब्रह्म-सत्ता को प्रत्यक्षवादी आधार ब्रह्मांडीय चेतना के रूप में मान्यता दे रहे हैं और जीव को बायो-प्लाज्मा के रूप में। दोनों का तारतम्य बैठ रहा है। आशा की जानी चाहिए कि अगले ही दिन जीवचेतना के संबंध में अनेकों महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रत्यक्षवादी पृष्ठभूमि पर भी प्रस्तुत हो सकेंगे, तब सर्वसाधारण के लिए मरणोत्तर जीवन के

अस्तित्व के तथ्य को सिद्ध कर सकना भी कुछ कठिन न रह जायेगा।

आइंस्टाइन कहते थे—आज न सही, कल यह सिद्ध होकर रहेगा कि अणु सत्ता पर किसी अविज्ञात चेतना का अधिकार और नियंत्रण है। भौतिक-जगत उसी की स्फुरणा है। पदार्थ मौलिक नहीं है, चेतना की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही पदार्थ का उद्‌भव हुआ है। भले ही आज यह तथ्य प्रयोगशाला में सिद्ध न हो सके, पर मेरा विश्वास है कि कभी वह सिद्ध होगा अवश्य।

जीव-तत्त्व की शोध के स्वस्थ कदम आत्मा की स्वतंत्र चेतन सत्ता स्वीकार करने पर ही आगे बढ़ सकेंगे। आत्मा को जड़ सिद्धांतों के अंतर्गत बाँधते रहने से चेतना विज्ञान के उपयुक्त विकास में बाधा ही खड़ी रहेगी और सही निष्कर्ष तक पहुँचने में एक भारी व्यवधान खड़ा रहेगा।

वैज्ञानिक शोधों में जिस जिज्ञासा की आवश्यकता पड़ती है, उसी सूक्ष्म दृष्टि को अपना कर आत्म-सत्ता की महत्ता और उसके स्वस्थ विकास की संभावनाओं को समझा जा सकता है। इस लाभ से मनुष्य जिस दिन लाभान्वित होगा, उस दिन उसे न अभाव, दारिद्रय का सामना करना पड़ेगा और न शोक-संताप का।

कठोपनिषद् के अनुसार बालक 'नचिकेता'—महाभाग यम से जीवन और मृत्यु की पहेली का उत्तर पूछता है। तैत्तरीय उपनिषद् में भृगु अपने पिता वरुण से ब्रह्म की प्रकृति तथा सर्वोच्च यथार्थ के बारे में जानना चाहता है। श्वेतकेतु ज्ञान से समृद्ध होकर लौटता है तो उसके पिता उससे पूछते हैं कि क्या उसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया ? जनक निरंतर याज्ञवल्क्य से एक के बाद एक प्रश्न पूछते हुए—एतरेय उपनिषद् में यही जानना चाह रहे हैं कि जीव को शुद्ध अंतरदृष्टि से किस प्रकार पूर्णता का बोध होता है।

इस समाधान को प्राप्त करके ही मानवी-चिंतन की सार्थकता और विकास क्रम की पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

❑ ❑

अध्याय ४

विदेशों में पुनर्जन्म की घटनाएँ एवं मान्यताएँ

मरणोत्तर जीवन एवं पुनर्जन्म की मान्यता हमें चिंतन के कितने ही उत्कृष्ट आधार प्रदान करती है। आज हम हिंदू, भारतीय एवं पुरुष हैं। कल के जन्म में ईसाई, योरोपियन या स्त्री हो सकते हैं। ऐसी दशा में क्यों ऐसे कलह बीज बोयें, क्यों ऐसी अनैतिक परंपराएँ प्रस्तुत करें, जो अगले जन्म में अपने लिये ही विपत्ति खड़ी कर दें। आज का सत्ताधीश, कुलीन, मनुष्य सोचता है कल प्रजाजन, अछूत एवं पशु बनना पड़ सकता है। उस स्थिति में उच्च स्थिति वालों का स्वेच्छाचार उनके लिए कितना कष्टकारक होगा ? इस तरह के विचार दूसरों की स्थिति में अपने को रखने और उदात्त दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देते हैं।

मृतात्माओं की हलचलों के जो प्रामाणिक विवरण समय-समय पर मिलते रहते हैं और पिछले जन्मों की सही स्मृति के प्रमाण देने वाले घटनाक्रमों के प्रत्यक्ष परिचय अब इतनी अधिक संख्या में सामने आ गये हैं कि उन्हें झुठलाया नहीं जा सकता। ऐसी दशा में पिछली पीढ़ी के वैज्ञानिकों की आत्मा का अस्तित्व न होने की बात सहज ही निरस्त हो जाती है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आत्मा के अस्तित्व को ही सिद्ध करते हैं। हमारा अस्तित्व मुक्ति में—मृत्यु के साथ—अथवा अन्य किसी स्थिति में किसी समय समाप्त हो जायेगा, इस कल्पना को कितना ही श्रम करने पर भी स्वीकार नहीं कर सकते। चेतना इस तथ्य को कभी भी स्वीकार न करेगी। यह स्वतः प्रमाण मनःशास्त्र

के आधार पर इस स्तर के समझे जा सकते हैं कि जीव चेतना की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करने के लिए संतोषजनक माना जा सके।

पदार्थ विज्ञानी यह जानते हैं कि तत्त्वों के मूलभूत गुण-धर्म को नहीं बदला जा सकता है। उनके सम्मिश्रण से पदार्थों की शकल बदल सकती है। रंग को गंध से, गंध को स्वाद में, स्वाद को रूप में, रूप को स्पर्श में नहीं बदला जा सकता है। हाँ, वे अपने मूल रूप में बने रहकर अन्य प्रकार की शकल या स्थिति तो बना सकते हैं, पर रहेंगे सजातीय ही। दो प्रकार की गंध मिलकर तीसरे प्रकार की गंध बन सकती है—दो प्रकार के स्वाद मिलकर तीसरे प्रकार का स्वाद बन सकता है, पर वे रहेंगे गंध या स्वाद ही, वे रूप या रंग नहीं बन सकते। विभिन्न प्रकार के परमाणुओं में विभिन्न प्रकार की हलचलें तो हैं, पर उनमें चेतना का कहीं अता-पता नहीं मिलता।

मस्तिष्क को संवेदना का आधार तो माना जा सकता है, पर उसके कण स्वयं संवेदनशील नहीं हैं। यदि होते तो मरण के उपरांत भी अनुभूतियाँ करते रहते। ध्वनि या प्रकाश के कंपन जड़ हैं—मस्तिष्कीय अणु भी जड़ हैं। दोनों के मिलन में जो विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं, उनमें पदार्थ को कारण नहीं माना जा सकता। चेतना की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार किये बिना प्राणी की चेतना सिद्ध करने के लिए जितने तर्क पिछले दिनों प्रस्तुत किये जाते रहे हैं, वे अब सभी क्रमशः अपनी तेजस्विता खोते जा रहे हैं। अमुक रसायनों या परमाणुओं के मिलने से चेतना की उत्पत्ति होती है और उनके बिछुड़ने से समाप्ति। यह तर्क आरंभ में बहुत आकर्षक प्रतीत हुआ था और नास्तिकवाद में जीव को इसी रूप में बताया था, पर अब उनके अपने ही तर्क अपने प्रतिपादन को स्वयं काट रहे हैं कि मूल-तत्त्व अपनी प्रकृति नहीं बदल सकता। विचार हीन परमाणु-संवेदनशील बन सकें, ऐसा कोई आधार अभी तक नहीं खोजा जा सका है। जड़ के साथ चेतना घुली हुई हो तो

उसके साथ-साथ जड़ में भी परिवर्तन हो सकते हैं। अभी इतना ही सिद्ध हो सका है। किसी परखनली में बिना चेतना जीवाणुओं की सहायता के मात्र रासायनिक पदार्थों की सहायता से जीवन उत्पन्न कर सकना संभव नहीं हुआ है। परखनली के सहारे चल रहे सारे प्रयोग अभी इस दिशा में एक भी सफलता की किरण नहीं पा सके हैं कि रासायनिक संयोग से जीवन का निर्माण संभव किया जा सके।

लोह खंडों के घर्षण से बिजली पैदा होती है तो भी बिजली लोहा नहीं है। स्नायु संचालन से संवेदना उत्पन्न होती है, किंतु संवेदना स्नायु नहीं हो सकते। अमुक रासायनिक पदार्थों के संयोग से जीवन उत्पन्न होता है तो भी वे पदार्थ जीवित नहीं हैं, चेतना का अवतरण कर सकने के माध्यम मात्र हैं।

हर्ष, शोक, क्रोध, प्रेम, आशा, निराशा, सुख-दुःख, पाप, पुण्य आदि विभिन्न संवेदनाएँ किन परमाणुओं के मिलने से ? किस प्रकार उत्पन्न हो सकती हैं, इस संदर्भ में विज्ञान सर्वथा निरुत्तर है।

भौतिक विज्ञानी यह कहते रहे हैं कि प्राणी एक प्रकार का रासायनिक संयोग है। जब तक पंचतत्त्वों का संतुलन क्रम शरीर को जीवित रखता है, तभी तक जीवधारी की सत्ता है। जब शरीर मरता है तो उसके साथ ही जीव भी मर जाता है। शरीर से भिन्न जीव की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

यह मान्यता मनुष्य को निराश ही नहीं, अनैतिक भी बनाती है। जब शरीर के साथ ही मरना है, तो फिर जितना मौज-मजा करना है वह क्यों न कर लिया जाय ? यदि राजदंड या समाज दंड से बचा जा सकता है, तो पाप-अपराधों के द्वारा अधिक जल्दी—अधिक मात्रा में—अधिक सुख-साधन क्यों न जुटाए जायें ? पुण्य-परमार्थ का जब हाथों-हाथ कोई लाभ नहीं मिलता तो उस झंझट में पड़कर धन तथा समय की बर्बादी क्यों की जाये ?

आस्तिकता के विचार अगले जन्म में पुण्यफलों की प्राप्ति पर विश्वास करते हैं। इस जन्म में कमाई हुई योग्यता का लाभ अगले जन्म में मिलने की बात सोचते हैं। अस्तु, उनके सत्प्रयत्न इसलिए नहीं रुकते कि मरने के बाद इनकी क्या उपयोगिता रहेगी। यह मान्यताएँ मनुष्य को नैतिक, परोपकारी एवं पुरुषार्थी बनाये रखने में बहुत सहायता करती हैं। नास्तिक की दृष्टि में यह सब बेकार है। आज का सुख ही उसके लिए जीवन की सफलता का केंद्र बिंदु है, भले ही वह किसी भी प्रकार अनैतिक उपयोग से ही क्यों न कमाया गया हो। यह मान्यता व्यक्ति की गरिमा और समाज की सुरक्षा दोनों ही दृष्टि से घातक है।

व्यक्ति की आदर्शवादिता और समाज की स्वस्थ परंपरा बनाये रहने के लिए आस्तिकवादी दर्शन के प्रति जनसाधारण की निष्ठा बनाये रहना आवश्यक है। आस्तिकता का एक महत्त्वपूर्ण अंग है—मरणोत्तर जीवन। जो इस जन्म में नहीं पाया जा सका वह अगले जन्म में मिल जायेगा, यह सोचकर मनुष्य बुरे कर्मों से बचा रहता है और सत्कर्म करने के उत्साह को बनाये रहता है। तत्काल भले-बुरे कर्मों का फल न मिलने के कारण जो निराशा उत्पन्न होती है, उसका समाधान पुनर्जन्म की मान्यता सँजोये रहने के अतिरिक्त और किसी प्रकार नहीं हो सकता। समाज संगठन और शासन-सत्ता में इतने छिद्र हैं कि भले कर्मों का सत्परिणाम मिलना तो दूर, बुरे कर्मों का दंड भी उनके द्वारा दे सकना संभव नहीं होता। अपराधी खुलकर खेलते रहते हैं और अपनी चतुरता के आधार पर बिना किसी प्रकार का दंड पाये मौज करते रहते हैं। इस स्थिति को देखकर सामान्य मनुष्यों का मन अनीति बरतने और अधिक लाभ उठाने के लिए लालायित होता है। इस पापलिप्सा पर अंकुश रखने के लिए ईश्वर के न्याय पर आस्था रखना आवश्यक हो जाता है और उस आस्था को अक्षुण्ण रखने के लिए मरणोत्तर जीवन की मान्यता के बिना काम नहीं चल सकता।

भौतिक विज्ञान ने शरीर के साथ जीव की सत्ता का अंत हो जाने का जो नास्तिकवादी प्रतिपादन किया हैं, उसका परिणाम नैतिकता की—परोपकार की सत्प्रवृत्तियों का बाँध तोड़ देने वाली विभीषिका के रूप में सामने आया है। आवश्यकता इस बात की है कि उस भ्रांत मान्यता को निरस्त किया जाय।

मरणोत्तर जीवन के दो प्रमाण ऐसे हैं, जिन्हें प्रत्यक्ष रूप में देखा, समझा और परखा जा सकता है। (१) पुनर्जन्म की स्मृतियाँ (२) प्रेत जीवन का अस्तित्व। समय-समय पर इस प्रकार के प्रमाण मिलते रहते हैं, जिनसे इन दोनों ही तथ्यों की सिद्धि भली प्रकार हो जाती है। मिथ्या कल्पना, अंध-विश्वास और किंवदंतियों की सीमाओं को तोड़ कर प्रामाणिक व्यक्तियों द्वारा किये गये अन्वेषणों से ऐसी घटनाएँ सामने आती रहती हैं, जिनसे उपरोक्त दोनों तथ्य भली प्रकार सिद्ध होते रहते हैं।

"आत्मा की खोज" विषय को लेकर विश्व भ्रमण करने वाले अमेरिका के एक विज्ञानवेत्ता डॉ० स्टीवेंसन कुछ समय पूर्व भारत भी आये थे। पुनर्जन्म को आत्मा के चिरस्थायी अस्तित्व का अच्छा प्रमाण मानते थे। अस्तु, उन्होंने भारत को इस शोधकार्य के लिए विशेष रूप से उपयुक्त समझा। भारत की धार्मिक मान्यता में पुनर्जन्म को स्वीकार किया गया है, इसलिए पिछले जन्म की स्मृतियाँ बताने वाले बालकों की बात यहाँ दिलचस्पी से सुनी जाती है और उससे प्रामाणिक तथ्य उभरकर सामने आते रहते हैं। अन्य देशों में यह स्थिति नहीं है। ईसाई और इस्लाम धर्मों में पुनर्जन्म की मान्यता नहीं है, इसलिए यदि कोई बालक उस तरह की बात करे तो उसे शैतान का प्रकोप समझकर डरा-धमका दिया जाता है जिससे उभरते तथ्य समाप्त हो जाते हैं।

डॉ० स्टीवेंसन ने संसार भर से लगभग ६०० ऐसी घटनाएँ एकत्रित की हैं, जिनमें किन्हीं व्यक्तियों द्वारा बताये गये उनके पूर्वजन्मों के अनुभव प्रामाणिक सिद्ध हुए हैं। इनमें बड़ी आयु के

लोग बहुत कम हैं। अधिकांश तीन से लेकर पाँच वर्ष तक के बालक हैं। नवोदित-कोमल मस्तिष्क पर पूर्वजन्म की छाया अधिक स्पष्ट रहती है। आयु बढ़ने के साथ-साथ वर्तमान जन्म की जानकारियाँ इतनी अधिक लद जाती हैं कि उस दबाव से पिछले स्मरण, विस्मृति के गर्त में गिरते चले जाते हैं।

पूर्वजन्म का स्मरण किस प्रकार के लोगों को रहता है, इस संबंध में डॉ० स्टीवेंसन का मत है कि जिनकी मृत्यु किसी उत्तेजनात्मक आवेशग्रस्त मनःस्थिति में हुई हो, उन्हें पिछली स्मृति अधिक याद रहती है। दुर्घटना, हत्या, आत्म-हत्या, प्रतिशोध, कातरता, अतृप्ति, मोहग्रस्तता के विक्षुब्ध घटनाक्रम प्राणी की चेतना पर गहरा प्रभाव डालते हैं और वे उद्वेग नये जन्म में भी स्मृतिपटल पर उभरते रहते हैं। अधिक प्यार या अधिक द्वेष जिनसे रहा है, वे लोग विशेष रूप से याद रहते हैं।

भय, आशंका, अभिरुचि, बुद्धिमत्ता, कला-कौशल आदि की भी पिछली छाप बनी रहती है। जिस प्रकार की दुर्घटना हुई हो उस स्तर का वातावरण देखते ही अकारण डर लगता है। जैसे किसी की मृत्यु पानी में डूबने से हुई हो तो उसे जलाशयों को देखकर अकारण ही डर लगने लगेगा। जो बिजली कड़कने और गिरने से मरा है, उसे साधारण पटाखों की आवाज भी डराती रहेगी। आकृति की बनावट और शरीर पर जहाँ-तहाँ पाये जाने वाले विशेष चिन्ह भी अगले जन्म में उसी प्रकार के पाये जाते हैं। एक स्मृति में पिछले जन्म में पेट का आपरेशन चिह्न अगले जन्म में भी उसी स्थान पर एक विशेष लकीर के रूप में पाया गया। पूर्वजन्म की स्मृति सँजोये रहने वालों में आधे से अधिक ऐसे थे, जिनकी मृत्यु पिछले जन्म में बीस वर्ष से कम में हुई थी। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे भावुक संवेदनाएँ समाप्त होती जाती हैं और मनुष्य बहुधंधी, कामकाजी तथा दुनियादार बनता जाता है। भावनात्मक कोमलता जितनी कठोर होती जायेगी, उतनी ही उसकी

संवेदनाएँ झीनी पड़ेंगी और स्मृतियाँ धुँधली पड़ जायेंगी। डॉ० स्टीवेन्सन की यह टिप्पणी मुख्यत: पश्चिम की पुनर्जन्म स्मृतियों के विश्लेषण पर आधारित है। निर्मल, सरस, सात्विक, आत्माओं को भी ऐसी स्मृतियाँ रहा करती हैं।

सामान्यतया यह कहा जाता है कि ईसाई और मुसलमान धर्मों में पुनर्जन्म की मान्यता नहीं है, पर उनके धर्मग्रंथों एवं मान्यताओं पर बारीक दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि प्रकारांतर से वे भी पुनर्जन्म की वास्तविकता को मान्यता देते हैं और परोक्ष रूप से उसे स्वीकार करते हैं।

प्रो० मैक्समूलर ने अपने ग्रंथ 'सिक्स सिस्टम्स ऑफ इंडियन फिलासफी' में ऐसे अनेक आधार एवं उद्धरण प्रस्तुत किये हैं, जो बताते हैं कि ईसाई धर्म पुनर्जन्म की आस्था से सर्वथा मुक्त नहीं है। प्लेटो और पायथागोरस के दार्शनिक ग्रंथों में इस मान्यता को स्वीकारा गया है। जौजेक्स ने अपनी पुस्तक में उन यहूदी सेनापतियों का हवाला दिया है, जो अपने सैनिकों को मरने के बाद भी फिर पृथ्वी पर जन्म मिलने का आश्वासन देकर उत्साहपूर्वक लड़ने के लिए उभारते थे। 'विज़डम ऑफ सोलेमन ग्रंथ' में महाप्रभु ईसा के वे कथन उद्धृत हैं, जिसमें उनने पुनर्जन्म का प्रतिपादन किया है। उन्होंने अपने शिष्यों से एक दिन कहा था—पिछले जन्म का एलिजा ही अब जॉन बैपटिस्ट के रूप में जन्मा था। बाइबिल के चैप्टर ३ पैरा ३-७ में ईसा कहते हैं—'मेरे इस कथन पर आश्चर्य मत करो कि तुम्हें निश्चित रूप से पुनर्जन्म लेना पड़ेगा।' ईसाई धर्म के प्राचीन आचार्य फादर ओरिजिन कहते थे—"प्रत्येक मनुष्य को अपने पूर्वजन्मों के कर्मों के अनुसार अगला जन्म धारण करना पड़ता है।"

दार्शनिक गेटे, फिश, शोलिंग, लेसिंग आदि ने पुनर्जन्म का प्रतिपादन किया है। अंग्रेज दार्शनिक ह्यूम तो दार्शनिक की

तात्विक दृष्टि की गहराई इस बात में परखते थे कि वह पुनर्जन्म को मान्यता देता है या नहीं।

सूफी संत, मौलाना रूम ने लिखा है, मैं पेड़-पौधे, कीट-पतंग, पशु-पक्षी योनियों में होकर मनुष्य वर्ग में प्रवेश हुआ हूँ और अब देव वर्ग में स्थान प्राप्त करने की तैयारी कर रहा हूँ।"

इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड एथिक्स के बारहवें खंड में अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमरीका के आदिवासियों के संबंध में यह अभिलेख है कि वे सभी समान रूप से पुनर्जन्म को मानते हैं। मरने से लेकर जन्मने तक की विधि-व्यवस्था में मतभेद होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि इन महाद्वीपों के आदिवासी आत्मा की सत्ता को मानते हैं और पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं। यहाँ विदेशों से संबंधित कुछ पुनर्जन्म प्रतिपादक घटनाएँ दी जा रही हैं।

एम्सटरडम (हालैंड) के एक स्कूल में वहाँ के प्रिंसिपल की लड़की मितगोल के साथ हाला नाम की एक ग्रामीण कन्या की बड़ी मित्रता थी। हाला देखने में बड़ी सुंदर थी, मितगोल विद्वान्। दोनों में समीपी संबंध था और परस्पर स्नेह भी। इसलिये वे प्रायः एक दूसरे से मिलती और पिकनिक पार्टियाँ मनाया करतीं।

एक बार की बात है कि दोनों सहेलियाँ कार से कहीं जा रही थीं। सामने से आ रहे किसी भारवाहक से बचाव करते समय कार एक विशालकाय वृक्ष के तने से जा टकराई। भीतर बैठी दोनों सहेलियों में से मितगोल को तो भयंकर चोटें आयीं, उसका संपूर्ण शरीर क्षत-विक्षत हो गया और कार से निकालते-निकालते उसका प्राणांत हो गया। हाला के शरीर में यद्यपि बाहर कोई घाव नहीं थे तथापि अंदर कहीं ऐसी चोट लगी कि उसका भी प्राणांत वहीं हो गया। दोनों शव बाहर निकाल कर रखे गये। तभी एकाएक एक विलक्षण घटना घटित हुई—जैसे किसी ने शक्ति लगाकर हाला के शरीर में प्राण प्रविष्ट करा दिये हों, वह एकाएक उठ बैठी और

प्रिंसिपल को पिताजी कहकर लिपटकर रोने लगी। सब लोगों ने उसे धैर्य दिलाया, पर सब आश्चर्यचकित थे कि यह किसान की कन्या प्रिंसिपल साहब को अपना पिता कैसे कहती है ? उनकी पुत्री मितगोल का शरीर तो अभी भी क्षत-विक्षत अवस्था में पड़ा हुआ था।

उसका नाम—हाला कहकर जब उसे संबोधित किया गया तो उसने बताया—पिताजी ! मैं हाला नहीं, मैं तो आपकी कन्या मितगोल हूँ। मैं अभी तक (शव की ओर इशारा करते हुए) इस शरीर में थी। अभी-अभी किसी अज्ञात शक्ति ने मुझे हाला के शरीर में डाल दिया है।

अनदेखी, अनहोनी इस घटना का जितना विस्तार होता गया लोगों का कौतूहल उतना ही बढ़ता गया। लोग तरह-तरह के प्रश्न पूछते और कन्या उनका ठीक वही उत्तर देती, जिनकी मितगोल को ही जानकारी हो सकती थी। मितगोल की कई सहेलियाँ, संबंधी आये और उनसे बातचीत की—उन सब वार्ताओं में हाला के शरीर में प्रविष्ट चेतना ने ऐसी-ऐसी एकांत की और गुप्त बातें तक बता दीं जो केवल मितगोल ही जानती थी।

एक अंतिम रूप से यह निश्चित करने के लिए, कि हाला के शरीर में विद्यमान आत्म-चेतना क्या वस्तुतः मितगोल ही है ? वहाँ के वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों, अध्यापकों और प्रिंसिपल सहित सैकड़ों छात्रों के बीच खड़ा कर उस कन्या से 'स्पिनोजा के दर्शन शास्त्र' पर व्याख्यान देने को कहा गया। उल्लेखनीय है कि वह मितगोल ही थी जिसे स्पिनोजा के दर्शन जैसे गूढ़ विषय पर अधिकार प्राप्त था। गाँव की सरल कन्या बेचारी हाला स्पिनोजा तो क्या अच्छी कविता भी बोलना नहीं जानती थी किंतु जब यह बालिका स्टेज पर खड़ी हुई तो उसने 'स्पिनोजा के तत्त्वज्ञान' पर भाषण देकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। प्रिंसिपल साहब ने स्वीकार किया कि उसके शब्द बोलने का ढंग हाव-भाव ज्यों-के-त्यों

मितगोल के जैसे ही हैं, इसलिए वह मितगोल ही है, भले ही इस घटना का अद्भुत रहस्य हम लोगों की समझ में न आता हो।

पुनर्जन्म, मृत्यु और उसके कुछ ही समय बाद जीवित होकर कई-कई वर्ष तक जीवित रहने की सैकड़ों घटनायें प्रकाश में आती रहती हैं और उनसे यह सोचने को विवश होना पड़ता है कि आत्म-चेतना पदार्थ से कोई भिन्न अस्तित्व है, फिर भी मनुष्य सांसारिक मोह-वासनाओं और तरह-तरह की महत्त्वाकांक्षाओं में इतना लिप्त हो चुका है कि उसे इस ओर ध्यान देने और एक अति महत्त्वपूर्ण तथ्य को समझकर आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने की भी प्रेरणा नहीं मिलती। महाराज युधिष्ठिर के शब्दों में इसे संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य ही कहना चाहिए।

इंडोनेशिया के प्रायः सभी समाचार पत्रों में उस देश की एक मुस्लिम महिला तजुत जहाराफोना का विवरण विस्तारपूर्वक छपा था, जिसके पेट में १८ महीने का बालक है और वह अंग्रेजी, फ्रेंच, जापानी तथा इंडोनेशियाई भाषाएँ बोलता है। उसकी आवाज बाहर सुनी जा सकती है। उसकी डाक्टरी जाँच बारीकी से की गई। यहाँ तक कि इस देश के राष्ट्रपति सुहार्तो स्वयं उस महिला से मिलने और चमत्कारी बालक के संबंध में बताई जाने वाली बातों की यथार्थता जाँचने पहुँचे थे।

लेबनान और तुर्की के मुस्लिम परिवारों में तो पुनर्जन्म की स्मृतियाँ ऐसी सामने आईं जिनकी प्रामाणिकता की जाँच परामनोविज्ञान के शोधकर्त्ताओं ने स्वयं जाकर की और जो बताया गया था उसे सही पाया।

लेबनान देश का एक गाँव कोरनाइल। वहाँ के मुसलमान परिवार में जन्मा एक बालक, नाम रखा गया अहमद। बच्चा जब दो वर्ष का था, तभी से अपने पूर्व जन्म की घटनाओं और संबंधियों के बारे में बुदबुदाया करता था। तब उसकी बातों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। कुछ बड़ा हुआ तो अपना निवास 'खरेबी और

नाम बोहमजी बताने लगा।' तब भी किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। एक दिन सड़क पर उसने खरेबी के किसी आदमी को निकलते देखा। उसने उसे पहचानकर पकड़ लिया। विचित्र अचंभे की बात थी।

पता लगने पर पुनर्जन्म के शोधकर्ता वहाँ पहुँचे और बड़ी कठिनाई से बालक को उसके बताये गाँव तक ले जाने की स्वीकृति प्राप्त कर सके। गाँव ४० कि० मी० दूर था। रास्ता बड़ा कठिन और सर्वथा अपरिचित। फिर भी वे लोग वहाँ पहुँचे। लड़के के बताये बयान उस २५ वर्षीय युवक इब्राहीम बोहमजी के साथ बिल्कुल मेल खाते गये, जिसकी मृत्यु रीढ़ की हड्डी के क्षय रोग से हुई थी। तब उसके पैर अशक्त हो गये। पर इस जन्म में जब वह ठीक तरह चलने लगा तो बचपन से ही इस बात को बड़े उत्साह और हर्ष के साथ हर किसी से कहा कि वह अब भली प्रकार चल फिर सकता है।

खरेबी में जाकर उसने कुटुंबी, संबंधी और मित्र, परिचितों को पहचाना, उनके नाम बताये और ऐसी घटनाएँ सुनाईं जो संबंधित लोगों को ही मालूम थीं और सही थीं। उसने अपनी प्रेयसी का नाम बताया। मित्र के ट्रक दुर्घटना में मरने की बात कही। मरे हुए भाई भाउद का चित्र पहचाना और पर्दा खोलकर बाहर आई लड़की के पूछने पर उसने कहा तुम तो मेरी बहिन 'हुडा' हो।

तुर्की के अदाना क्षेत्र में जन्मा इस्माइल नामक बालक जब १½ वर्ष का था, तभी वह अपने पूर्व जन्म की बातें सुनाते हुए कहता—मेरा नाम आविद सुजुल्मस है। अपने सिर पर बने एक निशान को दिखाकर बताया करता कि इस जगह चोट मारकर मेरी हत्या की गई थी। जब बालक पाँच वर्ष का हुआ और अपने पुराने गाँव जाने का अधिक आग्रह करने लगा तो घर वाले इस शर्त पर रजामंद हुए कि वह आगे-आगे चले और उस गाँव का रास्ता बिना किसी से पूछे स्वयं बताये। लड़का खुशी-खुशी चला गया और

सबसे पहले अपनी कब्र पर पहुँचा। पीछे उसने अपनी पत्नी हातिश को पहचाना और प्यार किया। इसके बाद उसने एक आइसक्रीम बेचने वाले मुहम्मद को पहचाना और कहा तुम पहले तरबूज बेचते थे और मेरे इतने पैसे तुम पर उधार हैं। मुहम्मद ने वह बात मंजूर की और बदले में उसे बर्फ खिलाई।

पत्र प्रतिनिधि बच्चे को अदना नगर ले गये। वहाँ वह अपनी पूर्व जन्म की बेटी गुलशरां को देखते हुए पहचान गया और मेरी बेटी—प्यारी बेटी गुलशरां कहकर आँसू बहाने लगा। उसने अपने हत्या के स्थान अस्तबल को दिखाया और बताया कि रमजान ने मुझ पर कुल्हाड़ी से हमला किया और मार डाला। इसके बाद वह अपनी कब्र पर पत्रकारों को ले गया जहाँ उसे दफनाया गया था। पुलिस ने भी इस कत्ल की ठीक वैसी ही जाँच की थी जैसी कि बच्चे ने बताई। हत्यारे को उससे पहले ही फाँसी लग चुकी थी। बालक इस्माइल का चचा उससे एक दिन क्रूर व्यवहार करने लगा तो उसने चिल्लाकर कहा—तुम भूल गये, मेरे ही बाग में काम करते थे और मैंने ही तुम्हें मुद्दतों रोटी खिलाई थीं। सचमुच आविद के इस जन्म के चचा पर भारी अहसान थे।

लेबनान के कारनाइल नगर से ६७ किलोमीटर दूर खरेबी गाँव के एक अहमद नामक लड़के ने कुछ बड़ा होते ही अपने पूर्व जन्म के अनेक विवरण बताये जिसमें ट्रक दुर्घटना, पैरों का खराब होना, प्रेमिका से विफलता, भाई का चित्र, बहिन का नाम आदि के वे संदर्भ प्रकाश में आये, जिनसे बालक का पूर्व परिचित होना संभव न था। बालक ड्रुज वंश का—इस्लाम धर्मावलंबी है। आमतौर से उस वातावरण में पुनर्जन्म की मान्यता नहीं है तो भी इस घटना ने उन्हें पुनर्विचार के लिए विवश कर दिया।

इंग्लैंड की एक विचित्र पुनर्जन्म घटना कुछ समय पूर्व प्रकाश में आई थी। नार्थंबरलैंड के एक सज्जन पोलक की

लड़कियाँ सड़क पर किसी मोटर की चपेट में आकर मर गई थीं। बड़ी ११ वर्ष की थी—जोआना। छोटी छह वर्ष की—जैकलीन।

दुर्घटना के कुछ समय बाद श्रीमती पोलक गर्भवती हुई तो उन्हें न जाने क्यों यही लगता रहा कि उनके पेट में दो जुड़वाँ लड़कियाँ हैं। डॉक्टरी जाँच कराई तो वैसा कुछ प्रमाण न मिला। पर पीछे समय पर दो जुड़वाँ लड़कियाँ ही जन्मी। एक का नाम रखा गिलियम, दूसरी का जेनिफर। इन दोनों के शरीरों पर वे निशान पाये गये जो उनके पूर्वजन्म में थे। इतना ही नहीं, उनकी आदतें भी वैसी ही थीं, जैसी मृत लड़कियों की। इन लड़कियों को मरी हुई बच्चियों के बारे में कुछ बताया नहीं गया था, पर वे बड़ी होने पर आपस में पूवर्जन्म की घटनाओं की चर्चा करती हुई पाई गईं। समयानुसार उनने पूर्वजन्म के अनेकों संस्मरण बताकर तथा अपने उपयोग में आने वाली वस्तुओं की जानकारी देकर यह सिद्ध किया कि उन दोनों ने पुनर्जन्म लिया है।

पुनर्जन्म होने और पूर्वजन्म की स्मृति बनी रहने वाली घटनाओं की शृंखला में एक कड़ी माइकेल शेल्डन की इटली-यात्रा की है। इटली में यों प्रत्यक्षतः उसे कुछ आकर्षण नहीं था और न कोई ऐसा कारण था—जिसकी वजह से इस यात्रा के बिना उसे चैन ही न पड़े। कोई अज्ञात प्रेरणा उसे इसके लिए एक प्रकार से विवश ही कर रही थी। माइकेल ने यात्रा के कुछ ही दिन पूर्व एक स्वप्न देखा कि वह इटली के किसी पुराने नगर में पहुँचा है और किसी जानी-पहचानी गली में घुसकर एक पुराने मकान में जा पहुँचा है। जीने में चढ़ते हुए वह चिर-परिचित दुमंजिले कमरे में सहज स्वभाव घुस गया और देखा—एक लड़की घायल पड़ी है, उसके गले पर छुरे के गहरे घाव हैं और रक्त बह रहा है। अनायास ही उसके मुँह से निकला—मारिया ! मारिया ! घबराना मत, मैं आ गया। सपना टूटा। शेल्डन विचित्र स्वप्न का कुछ

मतलब न समझ सका और आतंकित बना रहा। फिर भी यात्रा तो उसने की ही।

जब वह जिनोआ की सड़कों पर ऐसे ही चक्कर लगा रहा था तो उसे वही स्वप्न वाली गली दिखाई पड़ी। अनायास ही पैर उधर मुड़े और लगा कि वह किसी पूर्व परिचित घर की ओर चला जा रहा था। स्वप्न में देखी कोठरी यथावत थी, वह सहसा चिल्लाया—मारिया ! मारिया !! तुम कहाँ हो ?

जोर की आवाज सुनकर पड़ौस के घर में से एक बुढ़िया निकली, उसने कहा—मारिया तो कभी की मर चुकी। अब वहाँ कहाँ है ? पर तुम कौन हो ? बुढ़िया ने शेल्डन को घूर-घूर कर देखा और पहचानने के बारे में आश्वस्त होकर बोली—पर लुइगी ब्रोंदोनो ! तुम तो इतने अर्से बाद लौटे—अब तक कहाँ रह रहे थे ?

बुढ़िया हवा में गायब हो गई तो शेल्डन और भी अधिक अकचकाया। उसे ऐसा लगा—मानो किसी जादू की नगरी में घूम रहा है। अपरिचित जगह में ऐसे परिचय—मानो सब कुछ उसका जाना-पहचाना ही हो। बुढ़िया भी उसकी जानी-पहचानी हो—घर भी—गली भी ऐसी है-मानो वह वहाँ मुद्दतों रहा हो। मारिया मानो उसकी कोई अत्यंत घनिष्ठ परिचित हो।

हतप्रभ शैल्डन को एक बात सूझी, वह सीधा पुलिस आफिस गया और आग्रहपूर्वक यह पता लगाने लगा कि क्या कभी कोई मारिया नामक लड़की वहाँ रहती थी—क्या वह कत्ल में मरी ? तलाश कौतूहल की पूर्ति के लिए की गई थी, पर आश्चर्य यह है कि १२२ वर्ष पुरानी एक फाइल से उस घटना की पुष्टि कर दी।

पुलिस-रिकार्ड के कागजों ने बताया कि उसी मकान में मारिया बुइसाकारानेबो नामक एक १६ वर्षीय लड़की रहती थी। उसकी घनिष्ठता एक २५ वर्षीय युवक लुइगी ब्रोंदोनो नामक युवक से थी। दोनों में अनबन हो गई तो युवक ने छुरे से उस लड़की पर

हमला कर दिया और कत्ल करने के बाद इटली छोड़कर किसी अन्य देश को भाग गया। तब से अब तक उसका कोई पता नहीं चला।

शेल्डन को यह विश्वास पूरी तरह जम गया कि वही पिछले जन्म में मारिया का प्रेमी और हत्यारा रहा है। यह तथ्य—उसे न तो स्वप्न प्रतीत होता था, न भ्रम वरन् जब भी चर्चा होती, उसके कहने का ढंग ऐसा ही होता—मानो किसी यथार्थ तथ्य का वर्णन कर रहा है।

इस घटना को परा मनोविज्ञानवेत्ताओं ने अपनी शोध का विषय बनाया। शैल्डन से लंबी पूछताछ की—पुलिस-कागजात देखे और निष्कर्ष पर पहुँचे कि जो बताया गया है—उसमें कोई बहकावा या अतिशयोक्ति नहीं है। इस प्रकार की अन्य घटनाओं के विवरणों पर गंभीर विचार करने के बाद शोधकर्त्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अतींद्रिय चेतना की प्रस्फुरणा से ऐसी घटनाओं की स्मृति भी सामने आ सकती है, जिनका न तो वर्तमान काल से कोई सीधा संबंध है और न अनुभव करमे वाले व्यक्ति को इस तरह की कोई जानकारी या जिज्ञासा। ये स्मृतियाँ पूर्वजन्म की ही हो सकती हैं।

कोपेन हेगन (डेनमार्क) में एक छह-सात वर्षीया बालिका थी उसका नाम था लूनी मार्कोनी। जब वह तीन वर्ष की थी तभी से वह अपने माता-पिता से कहती रहती कि वह फिलीपाइन्स की है और वहाँ जाना चाहती है। मेरे पिता एक रेस्टोरेंट के स्वामी हैं, वह अपना नाम मारिया एस्पना बताती। यह बच्ची अपने पूर्वजन्म के संस्मरण इतनी ताजगी से सुनाती, जैसे वह अभी कल-परसों की ही बात हो। उसने यह भी बताया कि उसकी मृत्यु १२ वर्ष की आयु में बुखार आने के कारण हुई थी। लड़की के दावों की जाँच करने के लिए परामनोविज्ञान के शोधकर्त्ता श्री प्रो० हेमेंद्रनाथ बनर्जी फिलीपाइन्स गये। वहाँ उन्होंने सारी बातें सत्य पाईं। यह ६८-६९ के लगभग की बात है।

ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध साहित्यकार डिक्सन स्मिथ बहुत समय तक मरणोत्तर जीवन के संबंध में अविश्वासी रहे। पीछे उन्होंने प्रामाणिक विवरणों के आधार पर अपनी राय बदली और वे परलोक एवं पुनर्जन्म के समर्थक बन गये। उन्होंने अपनी पुस्तक 'न्यू लाइट आन सरवाइवल' में उन तर्कों और प्रमाणों को प्रस्तुत किया है, जिनके कारण उन्हें अपनी सम्मति बदलने के लिए विवश होना पड़ा।

पैरिस के अंतर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक सम्मेलन में सर आर्थर कानन डायल ने परलोक विज्ञान को प्रामाणिक तथ्यों से परिपूर्ण बताते हुए कहा था उस मान्यता के आधार पर मनुष्य जाति को अधिक नैतिक एवं सामाजिक बनाया जा सकना संभव होगा और मरण वियोग से उत्पन्न शोक-संताप का एक आशा भरे आश्वासन के आधार पर शमन किया जा सकेगा।

निस्संदेह मरणोत्तर जीवन की मान्यता के दूरगामी सत्परिणाम हैं। उस मान्यता के आधार पर हमें मृत्यु की विभीषका को सहज सरल बनाने में भारी सहायता मिलती है। नैतिक मर्यादा की स्थिरता के लिए तो उसे दर्शनशास्त्र का बहुमूल्य सिद्धांत कह सकते हैं।

❑ ❑

अध्याय ५

जन्म मृत्यु का अविराम क्रम

डॉक्टर इवान स्टीवेन्सन ने पुनर्जन्म की स्मृति से संबंधित घटनाओं की जाँच-पड़ताल करने के संबंध में समस्त संसार का दौरा किया है। इस संदर्भ में वे भारत भी आये थे और उन्होंने यहाँ अनेकों घटनाओं की गंभीरतापूर्वक जाँच की और उनमें से अधिकांश को पूर्ण विश्वस्त बताया। इनकी खोज में दो घटनाएँ और भी अधिक आश्चर्यजनक थीं। कन्नौज के निकट जन्मे एक बालक के शरीर पर गहरे घावों के पाँच निशान जन्म काल से ही थे। वह कहता था पिछले जन्म में शत्रुओं ने उसकी हत्या चाकुओं से गोद कर की थी, यह उसी के निशान हैं। जाँच करने पर पूर्व जन्म में जहाँ उसने बताया था, सचमुच ही उस नाम के व्यक्ति की चाकुओं से गोद कर हत्या किये जाने का प्रमाण था। ठीक इसी से मिलती-जुलती एक पूर्व जन्म स्मृति तुर्की के एक बालक की थी, जिसकी शत्रुओं ने छुरे से हत्या की थी। उसके शरीर पर घावों के निशान मौजूद थे और पुलिस के रिकार्ड में बताये गये व्यक्ति की हत्या ठीक उसी प्रकार किये जाने का विवरण दर्ज था, जैसा कि उस बालक ने बताया था। डॉ० इवान स्टीवेन्सन ने समस्त विश्व में इस प्रकार के प्रामाणिक विवरण प्राप्त किये हैं। अन्य देशों की अपेक्षा भारत में ऐसे प्रमाण इसलिए अधिक मिलते हैं कि यहाँ की संस्कृति में पुनर्जन्म की मान्यता सहज ही सम्मिलित है, इसलिए स्मृति बताने वाले बालकों को उस तरह डाँटा-डपटा नहीं जाता जैसा कि पुनर्जन्म न मानने वाले ईसाई, मुसलमान धर्म वाले देशों में, वहाँ इस तरह की स्मृतियों की जाँच पड़ताल करना तो दूर, बताने वाले पर धर्म विरोधी होने के आक्रमण आरोप की बात

सोचकर उसे चुप कर देना ही ठीक समझा जाता है। भारत में स्थितियाँ अनुकूल होने से प्रमाणों को दबाया नहीं जाता।

डॉ० स्टीवेन्सन के शोधरिकार्ड में एक ऐसी पाँच वर्ष की लड़की की भी घटना थी, जो हिंदी भाषी परिवार में जन्म लेकर भी बंगला गीत गाती थी और उसी शैली में नृत्य करती थी। जबकि कोई बंगाली उस घर, परिवार के समीप भी नहीं था। इस लड़की ने अपना पूर्वजन्म सिलहट का बताया। इस जन्म में वह जबलपुर में पैदा हुई, पर उसने पूर्व जन्म की जो घटनाएँ तथा स्मृतियाँ बताईं, वे पता लगाने पर ६५ प्रतिशत सही सिद्ध हुईं। भारत में स्थितियाँ अनुकूल होने से प्रमाणों को दबाया नहीं जाता। इसी प्रकार की ११७ घटनाओं में डॉ० स्टीवेन्सन ने जाँच के बाद प्रामाणिक पाया, उनमें से कुछ ये हैं।

१—बदायूँ जिले के २१ वर्षीय प्रमोद कुमार ने अपने पूर्व जन्म के मुरादाबाद निवासी माता-पिता, पत्नी आदि को पहचाना। अपनी मृत्यु का कारण पेट का दर्द बताया। संबंधियों को पहचाना, जेवर आदि की चर्चा की तथा अनेक घटनाएँ बताईं।

२—बदायूँ कचहरी के चपरासी, रमेश नाई के चार वर्षीय पुत्र अनिल ने अपने को पूर्व जन्म में तेजपाल मुख्तार का पुत्र बताया। अपनी मृत्यु के संबंध में उसका कहना है कि अब से चार वर्ष पूर्व जब वह १६ वर्ष का था तब अपने बड़े भाई की पत्नी को लिवाने के लिए रिक्शे में जा रहा था कि रास्ते में ३३७ नम्बर की मोटर से रिक्शा टकरा गया और उसकी मृत्यु हो गई। सहसवान ले जाने पर उसने पूर्व जन्म के चचेरे भाइयों तथा उनकी पत्नियों को पहचाना। बड़े भाई की जूते की दुकान पर बिना रास्ता पूछे वह चला गया और बताया कि वह स्वयं भी इस दुकान पर बैठा करता था।

३—सिसौली गाँव के सुंदरलाल नामक एक डाक कर्मचारी की ७ वर्षीय पुत्री मीरा ने अपने को बदायूँ के सराफ सीताराम की

पत्नी बताया जिसका स्वर्गवास २३ वर्ष पूर्व हुआ था। तीन वर्ष की आयु में ही लड़की ने पूर्व जन्म की घटनाएँ बतानी शुरू की थीं। जब लड़की को बदायूँ ले जाया गया तो वह उस मकान पर अड़ गई जहाँ उसकी मृत्यु हुई थी। यह मकान बेच दिया गया है और सीताराम जी दूसरे मकान में रहने लगे हैं, यह बताने पर ही लड़की आगे बढ़ी। उससे अपने बेटे और पोते को भी पहचाना तथा कृषि में घाटा आना, घोड़ा ताँगा रहने आदि की अनेक बातें बताईं, जो सही थीं।

४—सुनील दत्त नामक लड़के ने अपने को पूर्व जन्म का स्वर्गीय सेठ श्रीकृष्ण बताया, उसके अनेक प्रमाण दिये तथा यह भी बताया कि उसने धर्मशाला, इंटर कॉलेज तथा रामलीला मैदान के फाटक निर्माण कराने में कितना दान स्वयं दिया और कितना दूसरों से दिलाया ? उसने ग्रुप फोटो में से अपना फोटो पहचान कर बताया।

५—मिदनापुर (बंगाल) के कालीचरण घोषाल (एम. ए.) पास करने के बाद एकाउंटेंट जनरल के दफ्तर में नौकर हो गये। पीछे उनका तबादला मद्रास हो गया। एक दिन एक के० वी० नायर नामक मद्रासी युवक उनसे मिलने आया और बोला मैंने देखते ही यह अनुभव किया कि आप पहले जन्म के मेरे छोटे भाई हैं। घोषाल जी को इस पर विश्वास न हुआ। अंततः यह निश्चय हुआ कि वस्तुस्थिति जानने के लिए बनारस चला जाय जहाँ कि उनके पिताजी रहते थे। दोनों गये। युवक ने पिताजी को ऐसी अनेक बातें बताईं जो उनके निजी परिवार के अतिरिक्त और किसी को मालूम न थीं। युवक की यह बात भी सच निकली कि उसे १२ वर्ष की आयु में डाकुओं द्वारा मारा गया था।

६—आज से कोई ५ वर्ष पूर्व घाटापोला गाँव में एक पोस्टमैन के घर रूबी कुसुमा नाम की एक कन्या पैदा हुई। जब उसे कुछ ज्ञान आया तो वह घर की तमाम वस्तुओं को शंका की दृष्टि से

देखने लगी। वह कहती यह मेरा घर नहीं। मेरे माता-पिता अलूथवाला गाँव में रहते हैं, यह स्थान यहाँ से चार मील दूर है। वहाँ मुझे अच्छी-अच्छी वस्तुएँ खाने को मिलती थीं। एक दिन मेरे माता-पिता खेत काटकर लौट रहे थे। मार्ग में एक कुँए पर पानी पीते समय मैं उसमें गिर गई और मेरी मृत्यु हो गई। उसने अपने पिता का नाम पुंजीनोबा और एक भाई का नाम करुणासेन बताया। उसने अपनी चाची और नंदराम मंदिर की भी कई घटनायें सुनाईं, जब इनकी जाँच की गई तो देखा गया कि लड़की की बताई हुई सारी बातें सच हैं। मंदिर के पुजारी ने भी बताया कि उसकी बताई हुई बातों का संबंध सचमुच इसी मंदिर से है। बात सच थी, पर लौटना खाली हाथ ही पड़ा।

७—चार वर्ष का एक नन्हा बालक अपने पिता से बोला—"पिताजी मुझे बंदूक खरीद दीजिये शिकार खेलने का मन करता है।" पिता ने सोचा लड़के ने किसी को ऐसा कहते हुए सुना होगा। बच्चे अनुकरणशील होते हैं। बात याद आयी होगी तो उसने बंदूक की माँग कर दी। स्नेह में आकर—कुछ बहलाने की दृष्टि से कह दिया—बेटा ! मेरे पास इतने रुपये कहाँ हैं, जो तुम्हें बंदूक खरीदूँ ?

लड़के ने पहले जैसी स्वाभाविक मुद्रा में कहा—पिताजी ! पैसों की चिंता मत कीजिये। मैंने बहुत से रुपये जमीन के अंदर छिपाकर रखे हैं, आप चाहें तो मेरे साथ पिलखाना गाँव चलें—वहाँ मैं अपने गढ़े रुपये निकालकर दे सकता हूँ।

घटना शाहजहाँपुर (उ० प्र०) जिले की और वहाँ से १२ मील दूर एक छोटे-से गाँव गाहरा की है, जो कुछ समय पूर्व अखबारों में भी प्रकाश में आई थी और जो पुनर्जन्म की वास्तविकता से संबंध रखती है।

यह कोई नयी बात नहीं थी। गाहरा ग्राम का यह लड़का अपने पिता पुत्तू लाल पासी को पहले भी कई बार कह चुका था

कि पिताजी मैं तो पिलखाना का लोहार हूँ मेरी स्त्री है, बच्ची है, मेरे भाई का नाम दुर्गा है मेरी ससुराल कांजा गाँव में है। पिता अपने बेटे की बात सुनता और भारतीय मान्यताओं के अनुरूप अनुभव भी करता, कि बच्चा हो सकता है पूर्व जन्म में सचमुच ही पिलखाना में रहा हो। पर वह हर-हमेशा बच्चे की पुरानी स्मृतियों को टालता ही रहा।

किंतु जब उसने धन गढ़े होने की बात कही तो कौतूहल वश कहिये या लालच में, वह बच्चे को पिलखाना ले गया। वहाँ उसने अपनी पत्नी को पहचान लिया, पुत्री को पहचान लिया। यद्यपि घर का कई स्थानों पर पुनर्निर्माण हो चुका है तथापि वह अपने कमरे में गया और वह धन जो उसने पूर्व जन्म में गाढ़ा था बता दिया। उसके पूर्व जन्म के भाई दुर्गा ने वहीं सबके सामने खोदा और सचमुच ही गढ़ा हुआ धन पाकर आश्चर्यचकित हो गया। बच्चे से कई प्रश्न पूछे गये जो उसने सच-सच बता दिये, जिससे यह प्रमाणित हो गया कि वह दुर्गा का भाई ही है। तभी उसने आग्रहपूर्वक कहा—जब मैं बीमार था तब मेरे लिए एक नई धोती और एक नया कुर्ता आया था। वह मैं पहन नहीं पाया था। वह अमुक बक्से में रखे थे। घर वालों ने वह बक्सा खोला तो सचमुच जैसी उसने बताई थी वैसी धोती और वैसा ही नया कुर्ता रखा हुआ मिल गया। पर उस बेचारे को वह नया कुर्ता भी नहीं मिल सका। उसी तरह खाली हाथ अपनी उस नई जन्मभूमि में लौट आया जिस तरह जिंदगी भर कहीं से भी छल-कपट और अनीतिपूर्वक बटोरने वाले लोग मृत्यु के समय खाली हाथ लौट जाते हैं। संचित कमाई की एक पाई भी तो साथ नहीं जाती।

८—करुण की ओर संकेत करते हुए ५ वर्ष की लड़की शुक्ला ने कहा—यह हमारे 'तूमी' हैं। खेतू नामक करुण के बड़े भाई को उसने मीनू के चाचा और श्री हरिधन चक्रवर्ती की ओर संकेत से ही उसने कहा—यह मीनू के पिता हैं और 'मीनू' को तो

देखते ही उसकी वर्षों की करुणा और ममता फूट पड़ी। थी वह पाँच वर्ष की ही बालिका, पर एक प्रौढ़ माता की तरह उसकी आँखों से आँसू झरने लगे।

'तूमी' बंगाल में छोटे देवर को कहते हैं। करुण को उसकी बड़ी भाभी ही तूमी कहती थी और सब कुटी कहा करते थे। इससे घटनास्थल पर उपस्थित सभी व्यक्ति आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सके। पच्चीस-तीस व्यक्तियों के बीच अपने पूर्वजन्म के पति, देवर, ससुर और पुत्री को पहचान लेना कौतूहलवर्द्धक था।

शुक्ला का जन्म सन् १९५४ में पश्चिमी बंगाल के कंपा नामक गाँव में श्री के० एन० सेन गुप्ता के यहाँ हुआ। अभी वह कोई दो वर्ष की ही हुई थी और बोलने का हल्का-हल्का-सा ही अभ्यास हुआ था, तभी वह कोई गुड़िया, लकड़ी या जो कुछ भी खेलने को पाती, उसे ही 'मीनू-मीनू' कहकर अपने हृदय से लगा लेती। छोटी-सी बालिका में मातृत्व के यह प्रौढ़-संस्कार घर वालों को आकृष्ट अवश्य करते, पर किसी ने उस पर उसी तरह गंभीरता से ध्यान नहीं दिया।

शुक्ला जैसे-जैसे बड़ी होने लगी, उसके मस्तिष्क में पूर्व जन्म की स्मृतियाँ और भी तीव्रता से उभरने लगीं। वह अपनी माँ से, पिता से और सब घर वालों से कहती—मेरी ससुराल भारपाड़ा के रथतला स्थान में है। वहाँ मेरे पति, देवर और सौतेली सास रहती है। मेरे पति मुझे एक ही बार सिनेमा दिखाने ले गये थे। उस पर सास बड़ी नाराज हुई थी। मेरी लड़की का नाम मीनू है। आप लोग मुझे रथतला ले चलिये, मुझे अपनी मीनू की बहुत याद आती है। मरने से लेकर मुझे अब तक भी उसकी याद नहीं भूलती।

शुक्ला अभी पाँच वर्ष की ही थी, पर इतनी बातें बताती थी कि घर वाले हैरान रह जाते। पता लगाने पर मालूम हुआ कि सचमुच वहाँ से कोई १५ मील दूरी पर रथतला स्थान है। वे लोग एक दिन शुक्ला को लेकर वहाँ पहुँचे और गाँव के किनारे ही ले

जाकर छोड़ दिया। इसके बाद शुक्ला गलियों-गलियों होती हुई अपने ससुराल के घर जा पहुँची।

इसके बाद उसने अपने पूर्व के सभी संबंधियों को न केवल पहचान लिया वरन् प्रत्येक के साथ उसने भारतीय नारी के आदर्शानुरूप लज्जा व संकोच का प्रदर्शन भी किया। उसने बताया कि मेरा पहले का नाम 'मना' था। डॉ० पाल आदि परामनोविज्ञान के शोधकर्त्ताओं को कई ऐसी बातें भी बताईं, जो उसके पति के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था और वे सच भी निकलीं। विश्वास विश्वविद्यालय का परामनोविज्ञान विभाग इस संबंध में बड़ी तत्परता से व्यापक शोध कार्य कर रहा है। इस अनुसंधान कार्य में आश्चर्यजनक तथ्य हाथ लगे हैं। नीचे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं, वह इस विश्वविद्यालय के परामनोवैज्ञानिकों की खोजें हैं—

लंका में ६ वर्ष पूर्व नवंबर १९६२ में नुगेगोड़ा के श्री जयसेना के घर एक लड़का पैदा हुआ। बच्चा जब तक बोल नहीं सकता था, तब तक तो कोई घटना नहीं घटी पर जैसे ही उसने बोलना सीख लिया, वह माँ से हमेशा कहता रहता—"तुम मेरी माँ नहीं हो। मेरी माँ बेबमगोंडा में रहती है।"

जयसेना परिवार इस बात से दुःखी तो होता था पर सन् १९६५ तक उन्होंने इस संबंध में कोई छानबीन नहीं की। एक दिन श्रीमती जयसेना और उनके पति अपने किसी संबंधी से भेंट करने मटाले जा रहे थे। २४ मील की यात्रा करते ही बच्चा सीट पर खड़ा होकर चिल्लाने लगा—"यहीं मेरी माँ का घर है, मुझे उतार दो।" जाते समय तो बच्चे को बलपूर्वक बैठा लिया गया, किंतु उन सबने लौटते समय सच्चाई की जाँच करने का निश्चय किया। लौटते समय उन्होंने एक टैक्सी कर ली। जैसे ही टैक्सी उस स्थान पर पहुँची बच्चा फिर चिल्लाया टैक्सी रोक दी गई। बच्चा उससे उतरकर एक घर की ओर तेजी से भागा। बच्चे को पकड़ कर लोग फिर गाड़ी में तो ले आये पर यह पता लगा लिया कि

यहाँ सेनेविरले नाम की एक महिला का बच्चा कई वर्ष पूर्व खो गया था।

कुछ दिन बाद विस्तृत जाँच के लिए बच्चे को वहाँ फिर लाया गया तो बच्चा स्वयं आगे चलकर अपने पूर्वजन्म के घर तक पहुँच गया और सेनेविरले के पैरों में सिर रखकर माँ-माँ कहकर रोने लगा। उसने अपनी माँ को याद दिलाते हुए यह भी बताया कि एक बार उसके भाई ने उसे पीटा था। चाचा चार्ली के बिजली के कारखाने और अपने धान के खेत भी उसने पहचान लिये। सेनेविरले जो कभी पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करती थी मान गई कि तीन वर्ष पूर्व उनका जो बच्चा खो गया था, वही जयसेना के उदर से जन्मा है।

जयपुर के एक सरकारी कर्मचारी के ७ वर्षीय बालक मुकुल ने अपनी पूर्व जन्म की घटनाएँ बताकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। लड़के ने बताया कि वह लखनऊ मेडीकल कॉलेज का विद्यार्थी था। अपने भाई के साथ कार में जा रहा था तो कार के ट्रक से टकरा जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। उसने यह भी बताया कि उसकी बहिन का नाम आशा-ग्वाले का गोविंद और कुत्ते का टॉमी था, बच्चा छोटी आयु में ही कितनी ही बीमारियों के संबंध में जानकारी तथा दवाएँ बताता था।

मथुरा से थोड़ी दूर पर छाता कस्बा है। वहाँ के निवासी श्री ब्रजलाल वार्ष्णेय के घर एक बच्चे ने जन्म लिया। उसका नाम प्रकाश रखा गया। अभी यह बालक चार ही वर्ष का हुआ था कि वह एक दिन रात को सोते-सोते उठा, घर से निकलकर बाहर आ गया और सड़क की ओर चल पड़ा, यह तो अच्छा हुआ कि घर वालों को पता चल गया, वे पीछे-पीछे भागे और बच्चे को थोड़ी ही दूर से पकड़ लाये।

किंतु हैरानी उस समय और बढ़ गई जब प्रकाश का स्वभाव सा हो गया कि वह रात के अँधेरे में ही अकेला जाग पड़ता और

चुपचाप घर से निकलकर सड़क की ओर भागने लगता। घर वाले पकड़ते और पूछते तो वह कहता—मुझे कोसी कलाँ ले चलो मेरा घर कोसी में है, वहाँ मेरे माता-पिता, भाई और बहन हैं मैं उनसे मिलूँगा।

वार्ष्णेय परिवार लगातार की इस परेशानी से चिंतित तो था ही अब उनकी जिज्ञासायें और तर्क-वितर्क भी प्रबल हो उठीं। एक दिन वे बच्चे को कोसी लेकर आये भी पर दैवयोग से उस दिन वह दुकान बंद थी, जिसे वह अपने पूर्वजन्म की दुकान कहता था इसलिए वह और कुछ पहचान न पाया और इस तरह जैसे गया था वैसे ही वापस ले आया गया।

अगले दिन उस दुकान के मालिक श्री भोलानाथ जैन को पता चला कि कोई लड़का छाता से यहाँ आया था और यह कहता था कि वह उनके पूर्वजन्म के पिता की दुकान है तो एकाएक उन्हें ५ वर्ष पूर्व हुई अपने दस वर्षीय पुत्र निर्मल की मृत्यु की घटना याद ही आई। निर्मल बीमार पड़ा था। लगातार कोशिशों के बाद उसका बुखार टूटा नहीं एकाएक ऐसा जान पड़ा कि बालक का बुखार बिल्कुल उतर गया है वह स्वस्थ चित्त होकर बातें करने लगा।

निर्मल ने कहा—"मैं छाता अपनी माँ के पास जा रहा हूँ" और इसके बाद ही उसका निधन हो गया था।

उस घटना की याद आते ही श्री भोलानाथ जैन ने छाता जाने का निश्चय किया। साथ अपनी पुत्री को लेकर जब वे छाता पहुँचे और पता लगाते हुए श्री बृजलाल वार्ष्णेय के यहाँ पहुँचे तो बालक प्रकाश उन्हें देखते ही खुशी से नाच उठा और श्री भोलानाथ की पुत्री को अपनी बहिन तारा कहकर उसके साथ घुल-मिल कर ऐसी बातें करने लगा जैसे उसके साथ वर्षों की पहचान हो।

इस घटना के बाद प्रकाश की सोई स्मृतियाँ एक बार पुनः तीव्र हो उठीं। अब यह पुनः कोसी कलाँ जाने के लिए हठ करने

लगा। श्री भोलानाथ के आग्रह पर वार्ष्णेय परिवार उसे कोसीकलां लाने के लिए राजी हो गया पर वे लोग भीतर ही भीतर कुछ डर से रहे थे कि कहीं ऐसा न हो कि लड़का वहाँ से न आने का ही हठ करने लगे और वह अपने हाथ से भी चला जाये।

कोसीकलां लाये जाने पर उसने अपने पूर्व जन्म की माँ और अपने भाई जगदीश को पहचान लिया और अपने भाई देवेंद्र को तो उसने देखते ही 'देवेंद्र' कहकर पुकारा भी, उससे लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, कि क्या पूर्व जन्मों की स्मृतियाँ इतनी भी स्पष्ट हो सकती हैं। दोनों परिवारों की बातचीत से पता चला कि पूर्व जन्म के निर्मल और अब के प्रकाश की रुचि, आदतें, व्यवहार बहुत अंशों में एक ही समान हैं। निर्मल ने ही प्रकाश के रूप में जन्म लिया है। इस संबंध में कोई संदेह शेष नहीं रहता। पहले जन्म में उसने छाता जाने का मोह प्रदर्शित किया। इस जन्म में उसकी कोसी के प्रति ममता है—कुछ ऐसी माया का फेर है कि मनुष्य बार-बार जन्म लेता और मरता है पर अपने शाश्वत स्वरूप को पहचानने और पाने का प्रयत्न नहीं करता।

पुनर्जन्म का पूर्वाभास

इसी तरह का एक और प्रसंग कल्याण मार्च १९६६ में छपी बेमुला (लंका) का है। सुरेश मैतृमूर्ति नाम के एक व्यक्ति जिन्होंने बौद्ध धर्म में दीक्षा ली थी बीमार पड़ गये। बीमारी के दिनों में उन्हें किसी अज्ञात प्रेरणा से मालूम हो गया कि उनकी मृत्यु कल शाम तक अवश्य हो जायेगी और उनका दूसरा जन्म उत्तर भारत में कहीं होगा।

लोगों ने इनकी बातों का विश्वास नहीं किया, क्योंकि तब स्थिति काफी सुधर चुकी थी। दिन भर स्थिति सुधरती ही रही किंतु बात उन्हीं की सच हुई, सायंकाल से पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई। मरने से पूर्व उन्होंने अपनी कलाई घड़ी अपने गुरुभाई श्री

आनंद नेत्राय को दी दोनों में बड़ा आत्म-भाव था, इसलिये श्री नेत्राय ने उनकी दूसरी बात का भी पता लगाने का निश्चय किया।

कई वर्ष बाद श्री आनंद नेत्राय मद्रास आये और एक योगी से मिले उसने बताया कि सुरेश का जन्म बिहार प्रांत में हुआ है। पिता का नाम रमेश सिंह और माता का नाम सावित्री बताया। इतने सूत्र मिल जाने पर श्री आनंद नेत्राय ने पुलिस रिकार्ड की सहायता से पता लगाया। बच्चे का पता चल गया और कुछ विचित्र बातें सामने आई जैसे यह कि यह बालक भी अपने पूर्व जन्म की बातें बताने लगा। आनंद नेत्राय लंका में प्रोफेसर हैं। वे बच्चे को वहाँ ले गये। उसने जहाँ अनेक बातें स्पष्ट पहचानीं, वहाँ लोगों को अपनी घड़ी पहचानकर आश्चर्यचकित कर दिया। आनंद नेत्राय के हाथ की घडी देखते ही उसने कहा—"यह घड़ी मेरी है। यह वही घड़ी थी जो मृत्यु के पूर्व सुरेश ने ही आनंदजी को दी थी।"

बरेली जिले के बहेड़ी ग्राम में पुनर्जीवन की एक विलक्षण घटना घटित हुई। गन्ना विकास संघ के एक चपरासी की एक अल्प-वयस्क पुत्री की मृत्यु हो गई। जब उसे दफनाने के लिए ले जाया जा रहा था तो शव हिलता-डुलता दिखाई दिया। जमीन पर रख दी गई और थोड़ी देर में ही वह जीवित होकर उठ बैठी और भी विचित्र बात उस समय हुई, जब उस बालिका ने जैसे ही लौट कर घर में कदम रखा, तो पड़ौस की एक उसी आयु की बालिका की मृत्यु हो गयी। यह घटना मृत्यु के संबंध में और भी दार्शनिक गूढ़ता पैदा करने वाली कही जा रही है। इससे पता चलता है कि मृत्यु परमात्मा की एक नियमित व्यवस्था है, भले ही उसे समझने में कुछ समय क्यों न लगे।

मध्यप्रदेश छतरपुर जिले के असिस्टैंट इंसपेक्टर ऑफ स्कूल्स श्री एम० आई० मिश्र की एक कन्या जिसका नाम स्वर्णलता है, अपने पिछले दो जन्मों की बातें बताती है। इससे पहले वह असम के किसी गाँव में जन्मी थी। बालिका जिसे न तो कभी असम जाने का अवसर मिला न उसने असमिया भाषा ही

सीखी कुछ असमी भाषा के गीत भी सुनाती है, इसे अति मस्तिष्क की स्मृति शक्ति का चमत्कार ही कहा जा सकता है।

स्वर्णलता इससे पहले जबलपुर जिले में शाहपुर के समीप किसी गाँव में जन्मी थी। वह कहा करती कि उसके दो बेटे भी हैं, जब उसे उक्त स्थान पर ले जाया गया तो उसने घर, अपने दोनों बेटे और बहुत से पड़ौसियों को भी पहचान लिया। पता लगाने पर मालूम हुआ कि १६ वर्ष पूर्व इस घर में बिंदिया देवी नामक एक महिला की मृत्यु हृदय गति रुक जाने के कारण हो गई थी। १८ वर्ष में उसने दो जन्म धारण किये। विभिन्न स्थान और परिस्थितियों में जन्म लेने के पीछे परमात्मा का नियम विधान है, यह तो वही जानते होंगे। पर यह सुनिश्चित है कि मृत्यु के बाद ही जीवन का अंत नहीं हो जाता वरन् जीवात्मा की विकास यात्रा के यह दोनों पटाक्षेप हैं। जैसे दिन और रात गुजरने के बाद भी उनका क्रम नहीं टूटता, उसी प्रकार मृत्यु के बाद भी जीवन आता रहता है।

परामस्तिष्क की तरह वैज्ञानिकों को अब यह भी संदेह होने लगा है कि स्थूल शरीर में रहने वाले चेतन शरीर के सेल्स अग्नि या प्रकाश जैसे परमाणुओं से मिलते-जुलते होते हैं। इस शरीर में मस्तिष्क की संकल्प भावनायें, विचार और क्रिया-कलापों के द्वारा परिवर्तन होता रहता है। मृत्यु के बाद परिवर्तित और जीव का कर्मगति के अनुसार अन्य शरीर में विकास हो सकता है।

राजस्थान विश्वविद्यालय के परामनोवैज्ञानिक डॉ० एच० बनर्जी के अनुसार तिब्बती लोगों का भी ऐसा ही विश्वास है। वहीं की मान्यतायें भारतीयों जैसी ही हैं और यह माना जाता है कि कुछ लोगों के पुनर्जन्म तो सामान्य क्रम में होते रहते हैं पर संकल्पवान तेजस्वी आत्माएँ अपनी इच्छानुसार जीवन धारण करती हैं, इस संबंध में तिब्बत के वर्तमान १४वें दलाईलामा की घटना प्रस्तुत की जा सकती है।

वर्तमान दलाईलामा के संबंध में कहा जाता है कि वे १३वें दलाईलामा के ही अवतार हैं। उन्होंने मृत्यु के समय ऐसे चिह्न छोड़े थे कि उनका जन्म चीन के किसी प्रांत में होगा। निश्चित समय तक प्रतीक्षा के बाद तिब्बती मंत्रिपरिषद् के सदस्य चीन गये और उस बच्चे का पता लगा लिया, तब वह बालक दो वर्ष का ही था। उसे ल्हासा लाने की अनुमति माँगी गई तो वहाँ के गवर्नर ने उसके बदले तीन लाख चीनी रुपये लेकर बच्चे को ले जाने की अनुमति प्रदान की। जब इस बालक को तिब्बत लाया गया और उसे विधिवत समारोह के साथ दलाईलामा के सिंहासन पर बैठाया गया तो उसने संपूर्ण क्रियाएँ इतनी शुद्धता और गंभीरता से कीं, मानो वह स्थान और वहाँ के सभी कर्मचारी गण बहुत पहले से ही परिचित रहे हों।

प्रस्तुत घटनाएँ पढ़कर हमें अपने शास्त्रों के कथन पर विश्वास करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। परमात्मा जीव को अनंत आनंद लेने के लिए बार-बार सुयोग प्रदान करता है। जीव भौतिक आकर्षणों में पड़कर उस महाशक्ति को समझ नहीं पाता। माया का स्पर्श होते ही वह बुराइयाँ करने लगता है और इस तरह कर्म में बँधकर पुनर्जन्म के चक्कर में पड़ा दुःख उठाता रहता है। यह घटनाएँ कुछ निर्मल और जाग्रत आत्माओं की हो सकती हैं, जिन्हें अपने पूर्व जन्मों की थोड़ी याद रह जाती हो, अधिकांश को तो ज्ञान ही नहीं होता कि उनकी बाल्यावस्था किस तरह बीती तो उससे पूर्व और उससे भी पूर्व उनकी क्या स्थिति थी, इसका ज्ञान तो क्या, उसकी कल्पना भी उन्हें नहीं उठती।

परिस्थितियाँ, घटनायें और विज्ञान द्वारा इंद्रियातीत जगत की उपस्थिति स्वीकार कर लेने पर यह सोचने को विवश होना पड़ रहा है कि मनुष्य जीवन का अंत मृत्यु से नहीं हो जाता। काल-चक्र अनवरत चलता रहता है। मृत्यु के बाद जन्म और जन्म के बाद मृत्यु का क्रम निरंतर जारी रहता है।

□ □

जन्मांतर प्रगति या पतन के आधार—आत्म-सत्ता के संकल्प एवं कर्म

महर्षि वशिष्ठ राम को पुनर्जन्म प्रकरण पढ़ा रहे थे। उस समय की बात है जब एक प्रसंग में उन्होंने राम को बताया—

आशापाश शताबद्धा वासनाभाव धारिणः।
कायात्कायमुपायान्ति वृक्षाद्वृक्षमिवाण्डजा।।

हे राम ! मनुष्य का मन सैकड़ों आशाओं (महत्त्वाकांक्षाओं) और वासनाओं के बंधन में बँधा हुआ मृत्यु के उपरांत उन क्षुद्र वासनाओं की पूर्ति वाली योनियों और शरीरों में उसी प्रकार चला जाता है, जिस प्रकार एक पक्षी एक वृक्ष को छोड़कर फल की आशा से दूसरे वृक्ष पर जा बैठता है।

मनुष्य जैसा विचारशील प्राणी इतर योनियों—मक्खी, मच्छर, मेंढक, मछली, साँप, बैल, भैंस, मगर, नेवला, शेर, बाघ, चीता, भेड़िया, कौवा आदि योनियों में किस प्रकार चला जाता होगा ? यह बात राम की समझ में नहीं आई। उन्होंने अपनी शंका महर्षि के समक्ष प्रकट की और कहा—भगवन् ! मनुष्य जैसा समझदार व्यक्ति भला दूसरी योनियाँ क्यों पसंद करेगा ? इस पर महर्षि ने राम को जिस ढंग से जीवात्मा द्वारा अन्य शरीर धारण करने की व्यवस्था और मनोविज्ञान समझाया है; वह वस्तुतः हर विचारशील व्यक्ति के लिए मनन करने की अत्यंत महत्त्वपूर्ण वस्तु है—वशिष्ठ ने राम को वह तत्त्वज्ञान जिन शब्दों में दिया, योग-वशिष्ठ में उन्हें तीसरे अध्याय के ५५ सूत्र में ३६, ४०, ४१ और ४२ श्लोकों में इस प्रकार बताया है—

हे राम ! वीर्य रूप में जीवात्मा ही स्त्री की योनि में आता है और गर्भ में पककर एक बालक का रूप धारण करता है। (यहाँ शास्त्रकार का वह कथन भी प्रामाणिक है, जिसमें आत्मा को अणोऽरणीयान—अर्थात सूक्ष्म से भी सूक्ष्म कहा गया है। पुरुष शरीर का वीर्य कोष (स्पर्म) अत्यंत सूक्ष्म अणु होता है यह विज्ञान भी सिद्ध कर चुका है) और अपने पूर्व जन्मों के संस्कारों के अनुरूप अच्छा या बुरा शरीर प्राप्त करता है [उल्लेखनीय है कि उसी कोष में ही जीव की शारीरिक रचना के सारे गुण सूत्र (क्रोमोसोम) रहते हैं। यह भी विज्ञान सिद्ध कर चुका है।] बालक धीरे-धीरे बढ़ने लगता है और इस प्रकार वह युवावस्था में पदार्पण करता है। पकी हुई इंद्रियाँ अपना सुख माँगती हैं। कुछ पूरी होती हैं, अधिकांश अधूरी। अधूरी रह गई वासनाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ वह मनुष्य अपने मन में भीतर ही भीतर दबाता रहता है। एक बार उठी वासना जब तक पूर्ण नहीं हो जाती, नष्ट नहीं होती; वरन् वह भीतर ही भीतर और भी बलवती होती रहती है। [फ्रायड ने स्वप्न प्रकरण में स्वीकार किया है कि मनुष्य की दमित वासनाएँ ही स्वप्न में उसी तरह के काल्पनिक चित्र तैयार करती हैं और मनुष्य अद्‌भुत तथा अटपटे स्वप्न देखता है] वासनाओं के दमन से शरीर के पंच भौतिक पदार्थों पर दबाव पड़ता है और वे क्रमशः कमजोर होते चले जाते हैं, जिससे वृद्धावस्था आ जाती है और मनुष्य का शरीर मर जाता है; पर मन अपनी वासना के अनुसार एक-दूसरे जगत में प्रवेश कर जाता है। [गीता में भगवान् कृष्ण ने शरीरों को क्षेत्र या जगत कहा है। महर्षि वशिष्ठ ने यह जो दूसरे जगत में जाने की बात कही उसका तात्पर्य दूसरी योनि के शरीर से ही है। शरीर और भौतिक प्रकृति में कोई अंतर नहीं है, यह विज्ञान भी मानता है कि अब तक ढूँढ़े गये १०८ तत्त्व ही विभिन्न क्रमों में सजकर विभिन्न प्रकार के कोश और शरीरों की रचना करते हैं।] इस प्रकार अपने मन की वासना के अनुरूप जीव तब तक अनेक

शरीरों में भ्रमण करता रहता है जब तक उसकी वासनाएँ पूर्ण शांत नहीं हो जातीं और वह फिर से शुद्ध आत्मा की स्थिति में नहीं आ जाता।

चक्कर चौरासी लाख योनियों का

मोटे तौर से जीवात्मा के योनि-परिभ्रमण का अर्थ यह समझा जाता है कि वह छोटे-बड़े कृमि-कीटकों—पशु-पक्षियों की चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने के उपरांत मनुष्य जन्म पाता है। पुनर्जन्म की घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य को दूसरा जन्म मनुष्य योनि में ही मिलता है। इसके पीछे तर्क भी है। जीव की चेतना का इतना अधिक विकास, विस्तार हो चुका होता है कि उतने फैलाव को निम्न प्राणियों के मस्तिष्क में समेटा नहीं जा सकता। बड़ी आयु का मनुष्य अपने बचपन के कपड़े पहनकर गुजारा नहीं कर सकता। यही बात मनुष्य योनि में जन्मने के उपरांत पुनः छोटी योनियों में वापिस लौटने के संबंध में लागू होती है। यह हो सकता है कि जीवन-क्रमिक विकास करते हुए मनुष्य स्तर तक पहुँचा हो। इसका प्रतिपादन तो डार्विन के विकासवादी सिद्धांत में भी हो सकता है; पर एक बार मनुष्य जन्म लेने के बाद पीछे लौटने की बात तर्कसंगत नहीं है। कर्मों का फल भुगतने की बात हो तो दुष्कर्मों का दंड जितना अधिक मनुष्य जन्म में मिल सकता है, उतना पिछड़ी योनियों में नहीं। मनुष्य को शारीरिक कष्ट से भी अधिक मानसिक प्रताड़नाएँ सहनी पड़ती हैं। शोक, चिंता, भय, अपमान, घाटा, विछोह आदि से वह तिलमिला उठता है, जबकि अन्य प्राणियों को मात्र शारीरिक कष्ट ही होते हैं। मस्तिष्क अविकसित रहने के कारण उनमें भी उतनी तीव्र पीड़ा नहीं होती, जितनी मनुष्यों को होती है। ऐसी दशा में पाप कर्मों का दंड भुगतने के लिए निम्नगामी योनियों में मनुष्य को जाना पड़े यह आवश्यक नहीं।

यह सही है कि सामान्यतया मनुष्य का जन्म मनुष्य योनि में ही होता है। उसकी बौद्धिक चेतना इतनी विकसित हो चुकी होती है कि किसी अविकसित मस्तिष्क वाले म्यान में उसे ठूँसा नहीं जा सकता। बड़ी उम्र के व्यक्ति को छोटे बच्चे के कपड़े नहीं पहनाये जा सकते। इसलिए मनुष्य का अगला जन्म मनुष्य में ही होने की मान्यता अधिक तथ्यपूर्ण है। बुरे-भले कर्मों का फल तो मनुष्य शरीर में भी मिल सकता है, मिलता भी है।

किंतु इस नियम के अपवाद पाये गये हैं। मनुष्य का अन्य शरीर में प्रवेश अथवा जन्म जो कुछ भी कहा जाये उसके उदाहरण भी देखने को मिलते हैं। पशुओं के शरीर तथा मन में ऐसी विशेषताएँ पाई गई हैं, जो उनमें आश्चर्यजनक मात्रा में मानवी भावना एवं प्रकृति होने का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

पश्चिम बंगाल के वर्दवान जिले में चाँदमारी कॉलोनी आसन सोल निवासी अध्यापक श्री रामनरायण सिंह की गाय ने ३० अक्टूबर १९६६ को एक बछड़े को जन्म दिया। बंगाली नस्ल की काली गाय ने बछड़ा भी काला ही दिया। इस बछड़े की प्रकृति में मनुष्य जैसी मनोवृत्ति और आदतें देखने को मिलीं। इसकी विलक्षण प्रकृति को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे और अनुभव करते थे कि यह पूर्व जन्म का कोई भावुक मनुष्य ही रहा होगा।

बछड़ा आदमी की गोद में बच्चे की तरह सोने का प्रयत्न करता था। जब कोई प्यार से उसे सुला लेता तो आनंद विभोर होकर ऐसी मुद्रा में चला जाता, मानो होश-हवास खोकर गहरी निद्रा में चला गया। जब कभी अपने मालिक की गोद में किसी बच्चे को बैठा देख लेता तो उसे उतारकर ही छोड़ता और उस जगह पर खुद जा बैठता। यों खाता तो घास भी था, पर जब थाली में मनुष्य का भोजन दिया जाता तो खाने की तरतीब और सलीका देखते ही बनता। चाय का पूरा शौकीन—वह गर्म कितनी ही क्यों न

हो देखते-देखते प्याला साफ कर देता। पास बैठे मनुष्य को हल्का धक्का देकर यह इशारा करता कि उसे घास या रोटी हाथ से खिलाई जाय। बिना दाल-साग के रूखी रोटी देने पर उसे खाता नहीं और नाराजी जाहिर करता। गृह स्वामिनी उसके प्रति आवेश प्रकट करती तो घर के एक कोने में सट कर जा बैठता और आँसू बहाने लगता। यों प्रसाद में तुलसी के पत्ते वह प्रसन्नतापूर्वक खाता किंतु आँगन में लगे तुलसी के गमले पर उसने कभी मुँह नहीं डाला। पूजा के समय शांतिपूर्वक आकर बैठ जाता। रस्सी में बँधा होता तो उसे तुड़ाने का प्रयत्न करता और पूजा के समय देवस्थान तक पहुँचने का प्रयत्न करता।

सामान्यतः सृष्टि का विज्ञान सम्मत नियम यह है कि कोई भी जीव अपने माता-पिता के गुण सूत्रों (क्रोमोजोम्स) से प्रभावित होता है। शरीर के आकार-प्रकार से लेकर आहार-विहार और रहन-सहन की सारी क्रियाएँ मनुष्य ही नहीं जीव-जंतुओं में भी पैतृक होती हैं। इस नियम में थोड़ा बहुत अंतर तो उपेक्षणीय हो सकता है, पर असाधारण अपवाद उपेक्षणीय नहीं हो सकते जो संस्कार सैकड़ों पीढ़ी पूर्व में भी संभव न हों, ऐसे संस्कार और जीव-जंतुओं के विलक्षण कारनामे भारतीय दर्शन के पुनर्जन्म और जीव द्वारा कर्मवश चौरासी लाख योनियों में भ्रमण के सिद्धांत को ही पुष्ट करते हैं।

जोहानीज वर्ग (अफ्रीका) का एक गड़रिया बकरियाँ चराकर लौट रहा था। उसने एक झाड़ी के पास खों-खों कर रही बबून बंदरिया देखी। लगता था वह बच्चा अपने माँ-बाप से बिछुड़ गया है। गड़रिया उसे अपने साथ ले आया और जोहानीज वर्ग के एक औद्योगिक फार्म के मालिक को उपहार में दे दिया।

अफ्रीका की जिस बबून बंदरिया की घटना प्रस्तुत की जा रही है, उसमें असाधारण मानवीय गुणों का उभार उस औद्योगिक फार्म में पहुँचते ही उसकी आयु के विकास के साथ प्रारंभ हो गया। उसे किसी से कोई प्रशिक्षण नहीं मिला, फिर उसमें उस विलक्षण प्रतिभा

का जागरण कहाँ से हुआ जिसके कारण वह इस परिवार की अंतरंग सदस्या बन गई ? आज के विचारशील मनुष्य के सामने यह एक जटिल और सुलझाने के लिए बहुत आवश्यक प्रश्न है।

बंदरिया का नाम आहला रखा गया। फार्म—मालिक एस्टन को पशुओं से बड़ा लगाव है उनकी उपयोगिता समझने के कारण ही उन्होंने फार्म के भीतर ही एक पशुशाला भी स्थापित की है। उसमें गायें, बछड़े, बछड़ियाँ, कुत्ते, बकरियाँ आदि दूध देने वाले पशु भी पाले हैं, उनसे उनकी अच्छी आय भी होती है और बचे समय का उपयोग का साधन भी। पशुओं को चराने और उनकी देख-रेख के लिए एक नौकर रखा गया था। यह बंदरिया भी उसे ही देख-रेख के लिए दे दी गई।

नौकर उसे साथ लेकर गौ-चारण के लिए जाता था धीरे-धीरे उसको अभ्यास हो गया। एक दिन किसी कारण से नौकर अपने गाँव चला गया। उस दिन बिना किसी से कुछ कहे ठीक समय पर बंदरिया भेड़-बकरियों को बाड़े के बाहर निकाल ले गई और दोनों कुत्तों की सहायता से उन्हें दिन भर चराती रही। उसने चरवाहे का नहीं कुशल चरवाहे का काम किया। भटके हुए मेमनों को उनके माता-पिता तक बगल में दाबकर पहुँचाकर, जिनके पेट आधे भरे रह गये उन्हें हरी घास वाले भूभाग की ओर घेर कर पहुँचाकर उसने अपनी कुशलता का परिचय दिया। शाम को कुछ ऐसा हुआ कि बकरी का एक बच्चा तो जाकर स्तनों में लगकर दूध पीने लगा, दूसरा कहीं खेल रहा था। आहला ने देखा कि वह अकेला ही सारा दूध चट किये दे रहा है उसने उसे पकड़कर वहाँ से अलग किया। दूसरे बच्चे को भी लाई, तब फिर दोनों को एक-एक स्तन से लगाकर दूध पिलाया। मालिक यह देखकर बड़ा खुश हुआ। उसने चरवाहे को दूसरा काम दे दिया, तब से आहला लगातार १६ वर्ष तक चरवाहे का काम करती आ रही है। इस अवधि में उसने पशुओं की सुरक्षा, स्वास्थ्य रख-रखाव में ऐसे परिवर्तन और नये प्रबंध किये हैं, जिन्हें देखकर लगता है मानो वह पूर्व जन्म में

कोई गड़रिया रही हो और उसने भेड़ बकरिया चराने से लेकर उनकी व्यवस्था तक का सारा काम स्वयं किया हो।

वह शिकारी जंतुओं से मेमनों की रक्षा करती है। शाम को हर एक पशु की गणना करती है। कोई पशु बिछुड़ गया हो, कोई मेमना कहीं पीछे रह गया हो तो वह स्वयं जाकर उसे ढूँढ़कर लाती है। फुरसत के समय उनके शरीर के जुयें मारने से लेकर छोटे-छोटे मेमनों के साथ क्रीड़ा करने की सारी देख-रेख आह्लाद स्वयं करती है। उसे देखकर जोहानीज वर्ग के बड़े-बड़े वकील और डॉक्टर भी कहते हैं—इस बंदरिया के शरीर में यह कोई मनुष्य आत्मा है। कदाचित् उन्हें पता होता कि जीवनी शक्ति के रूप में आत्मा एक है, दो नहीं, वह शक्ति इच्छा रूप में इधर-उधर विचरण करती और कभी मनुष्य तो कभी पशु-पक्षी और अन्य जीव के रूप में जन्म लेती रहती है।

योग वशिष्ठ में इस तथ्य को बड़ी सरलता से प्रतिपादित किया गया है। लिखा है—

ऐहिकं प्राक्तनं वापि कर्म यद्चितं स्फुरत्।
पौरषोऽसो परो यत्नो न कदाचन निष्फलः।।

—३।९५।३४

अर्थात पूर्व जन्म और इस जन्म में किये हुए कर्म, फल—रूप में अवश्य प्रकट होते हैं मनुष्य का किया हुआ यत्न, फल लाये बिना नहीं रहता है।

कर्म की प्रेरणा, मन की इच्छा और आवेगों से होती है इसलिए इच्छाओं को ही कर्मफल का रूप देते हुए शास्त्रकार ने आगे लिखा है—

कर्म बीजं मनः स्पन्दः कथ्यतेऽथानुभूयते।
क्रियास्तु विविधास्तस्य शाखाश्चित्र फलास्तरोः।।

—योग वशिष्ठ ३।९६।११

अर्थात—मन का स्पंदन ही कर्मों का बीज है, कर्म और अनुभव में भी यही आता है। विविध क्रियाएँ ही तरह-तरह के फल लाती हैं।

नये शरीर में आने के पश्चात अपने पूर्व अनुभवों का विवरण लिखते हुए एक जागृत आत्मा की अनुभूति का वर्णन वेद में इस प्रकार आता है—

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा
म आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन्।
वैश्वानरोऽदब्ध स्तनूपा अग्निर्नः पातुः
दुरितादवधात्॥ —यजुर्वेद ४।१५

अर्थात-शरीर में जो प्राण शक्ति आग्नेय परमाणुओं के रूप में काम कर रही थी, मैंने जाना नहीं कि मेरे संस्कार उसमें किस प्रकार अंकित होते रहे। मृत्यु के समय मेरी पूर्व जन्म की इच्छाएँ, सोने के समय मन आदि सब इंद्रियों के विलीन हो जाने की तरह मेरे प्राण में विलीन हो गई थीं वह मेरे प्राणों का (इस दूसरे शरीर में) पुनर्जागरण होने पर ऐसे जाग्रत हो गये हैं जैसे सोने के बाद जागने पर मनुष्य, सोने के पहले के संकल्प विकल्प के आधार पर काम प्रारंभ कर देता है। अब मैं पुनः आँख, कान आदि इंद्रियों को प्राप्त कर जाग्रत हुआ हूँ और अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भुगतने को बाध्य हुआ हूँ।

इस कथन से आधुनिक विज्ञान का "जीन्स-सिद्धांत" पूरी तरह मेल खाता है। कोश के आग्नेय या प्रकाश भाग को ही प्राण कह सकते हैं। पैतृक या पूर्व जन्मों के संस्कार इन्हीं में होते हैं यदि प्राणों की सत्ता को शरीर से अलग रखकर उसके अध्ययन की क्षमता विज्ञान ने प्राप्त कर ली तो पुनर्जन्म और विभिन्न योनियों में भ्रमण का रहस्य भी वैज्ञानिक आसानी से जान लेंगे।

तथापि तब तक यह उदाहरण भी इस परिकल्पना की पुष्टि में कम सहायक नहीं। आहला बंदरिया उसका एक उदाहरण है।

बंदरों में मनुष्य से मिलती-जुलती बौद्धिक क्षमता तो होती है, पर यह कुशलता और सूक्ष्म विवेचन की क्षमता उनमें नहीं होती। यह संस्कार पूर्व जन्मों के ही हो सकते हैं। आहला की यह घटना दैनिक हिंदुस्तान और दुनिया के अन्य प्रमुख अखबारों में भी छप चुकी है। दिलचस्प बात तो यह है कि आहला एक बार कुछ दिन के लिए कहीं गायब हो गई। फिर अपने आप आ-आ गई। इसके कुछ दिन पीछे उसके बच्चा हुआ। बच्चे के प्रति उसका मोह असाधारण मानवीय जैसा था। दैवयोग से बच्चा मर गया पर आहला तब तक उसे छाती से लगाये, रही जब तक वह सूखकर अपने आप ही टुकड़े-टुकड़े नहीं हो गया। कुछ दिनों पूर्व पुनः गर्भवती हुई और उसकी खोई हुई प्रसन्नता फिर से वापस लौट आई।

बंदरिया ही क्यों अपने असाधारण कारनामों के लिए कैरेकस का एक तोता पिछले वर्ष ही विश्व विख्यात हो चुका है। इस तोते के बारे में लोगों का कहना है कि उसमें किसी कम्युनिस्ट नेता के गुण विद्यमान हैं। तोते को तोड़-फोड़ की कार्यवाही में सहयोग देने के अपराध में कैरेकस से २८७ मील दूर फाल्कन राज्य के सैन फ्रान्सिस्को स्थान पर बंदी बनाया गया।

यह तोता क्यूबा के "फिडल कास्ट्रो" विचारधारा के साम्यवादी गुरिल्लों को "हुर्रा" कहकर उत्साहित किया करता और उन्हें क्यूबाई भाषा से मिलते-जुलते उच्चारण और ध्वनि में मार्गदर्शन किया करता, गुरिल्ले उसके संकेत बहुत स्पष्ट समझने लगे थे। उन्हें इस तोते से बड़ी मदद मिलती थी। उन्होंने इसका नाम "चुचो" रखा था। अब इस तोते की जीभ साफ की जा रही है और उसे नई विचारधारा में ढालने का प्रयास किया जा रहा है, किंतु उसके संस्कारों में साम्यवाद की जड़ें इतनी गहरी जम गई हैं, मानो उसने साम्यवाद साहित्य का वर्षों अध्ययन और मनन किया हो। तोते की यह असाधारण क्षमता इस बात का संकेत है कि

अच्छे या बुरे कोई भी कर्म अपने सूक्ष्म संस्कारों के रूप में जीव का कभी भी पीछा नहीं छोड़ते चाहे वह बंदर हो या तोता।

यह दो उदाहरण व्यक्तिगत हैं, एक और उदाहरण ऐसा है जो यह बताता है कि व्यक्ति ही नहीं यदि सामाजिक परंपराएँ विकृत हो जायें और किसी समाज के अधिकांश लोग एक से विचार के अभ्यस्त हो जायें तो उन्हें उन कर्मों का फल सामूहिक रूप से भोगना पड़ता है। सन् १९१० के लगभग की बात है, दक्षिण पश्चिमी अमरीका सामाजिक अपराधों का गढ़ हो चुका था। मांसाहारी होने के कारण वहाँ के लोग उग्र स्वभाव के तो होते ही हैं। हत्या, डकैतियों की संख्या दिनों दिन बढ़ रही थी। ऐसे कई कुख्यात अपराधी मर भी चुके थे। उन्हीं दिनों वहाँ पाई जाने वाली भेड़ियों की "लोबो" जाति में कई ऐसे खूँखार भेड़िये पैदा हुए, जिनके आगे लोग हत्या और लूटपाट करने वालों का भी भय भूल गये।

कोलोरेडो का एक भेड़िया इतना दुष्ट निकला कि उसने अपने थोड़े से ही जीवन काल में इतने पशु मारे कि उनकी क्षति का यथार्थ अनुमान लगाने के लिए सरकारी सर्वेक्षण किया गया और यह पाया गया कि इस एक भेड़िये ने १००००० डालर के मूल्य के पशुओं को केवल शौक-शौक में मार डाला। इसे लोग "कोलोरेडो का कसाई" कहते थे और उसके असाधारण बुद्धि कौशल को देखकर मानते थे ऐसी चतुरता तो मनुष्यों में ही हो सकती है। प्रश्न यह है कि कोई खूँखार मनुष्य ही था जिसने कर्मफल या पूर्व जन्मों के संस्कारों के कारण भेड़िये के रूप में जन्म लिया।

१९१५ में ऐसे कई भेड़ियों का आतंक छा गया और तब सरकार को उन्हें मरवाने के लिए काफी धन भी खर्च करना पड़ा। "जैक द रिपर" भेड़िये को सरकार ने इनाम देकर मरवाया। एक तीन टाँग का भेड़िया, जिसने केवल अपना शौक अदा करने के

लिए लगभग एक हजार पशुओं का वध किया, वह भी ऐसे ही मारा गया। इसकी बुद्धि बताते हैं मनुष्यों से कम नहीं थी। धोखा देने, संगठित रूप से आक्रमण करने, चकमा देने में वह आश्चर्यजनक चतुरता बरतता। एक बार टेडी रूजवेल्ट नामक एक व्यक्ति ने अपने नौ शिकारी कुत्तों के साथ इस कसाई का पीछा किया। भेड़िया भागता ही गया रुका नहीं, रात होने को आई। कुत्ते रोक लिये गये। बस भेड़िया भी वहीं रुक गया। रात को कैंप लगाकर टेडी रुक गया और उस कैंप में घुसकर एक-एक करके भेड़िये ने नोओं कुत्तों को मार दिया और किसी को पता भी नहीं चल सका।

बंदरिया से लेकर तोते और भेड़िये तक के यह असाधारण संस्कार यह बात सोचने के लिए विवश करते हैं कि सचमुच ही कर्मफल जैसी कोई ईश्वरीय व्यवस्था भी है जो इच्छा शक्ति (जीव) को सैकड़ों योनियों में भ्रमण कराती, घुमाती रहती है।

अज-रहस्य

बकरा दौड़ता हुआ आया और आढ़त की दुकान में घुसकर भीतर लगी अन्न की ढेरी चबाने लगा। आढ़त का मालिक एक स्वस्थ नवयुवक, जो अभी पानी पीने कुएँ पर चला गया था दौड़ा-दौड़ा आया और बकरे की पीठ पर डंडे का ऐसा भयंकर प्रहार किया कि बकरा औंधे मुँह जमीन पर गिर पड़ा। दम निकलते-निकलते बचा। मिमियाता हुआ वहाँ से बाहर भाग गया।

आद्य शंकराचार्य एक स्थान पर बैठे यह दृश्य देख रहे थे उन्हें ऐसा देखकर हँसी आ गई, फिर वे एकाएक गंभीर हो गये। शिष्य श्रेष्ठि पुत्र ने प्रश्न किया—भगवन् ! बकरे पर प्रहार होते देख कर आपको एकाएक हँसी कैसे आ गई और अब आप इतने गंभीर क्यों हो गये ?

दिव्य दृष्टा आद्य शंकराचार्य ने बतलाया—वत्स ! यह बकरा जो आज डंडे की चोट खा रहा है, कभी उसी आढ़त का स्वामी था। यह नवयुवक कभी इसका पुत्र था, इस बेचारे ने अपने पुत्र

की सुख-सुविधाओं के लिए झूठ बोला, मिलावट की, शोषण किया वही पुत्र आज उसे मार रहा है—जीव की इस अज्ञानता पर हँसी आ गई, पर सोचता हूँ कि मनुष्य मोह-माया के बंधनों में किस प्रकार जकड़ गया है कि कर्मफल भोगते हुए भी कुछ समझ नहीं पाता। दुकान में बार-बार घुसने की तरह नश्वरता पर क्षणिक सुख भोगों पर विश्वास करता है और इस तरह दैहिक, दैविक एवं भौतिक कष्टों में पड़ा दुःख भुगतता रहता है।

अज-रहस्य की यह कथा अब पुरानी पड़ गई किंतु क्या वस्तु स्थिति भी पुरानी पड़ गई ? आद्य शंकराचार्य ने श्रेष्ठि पुत्र को जो ज्ञान दिया था, पुनर्जन्म, कर्मफल, आसक्ति, माया और सांसारिक कष्ट भुगतने के वह सिद्धांत क्या पुराने पड़ गये ? क्या अब वैसी घटनाएँ नहीं घटतीं ? सब कुछ होता है केवल समझ और शैली भर बदली है। अन्यथा आज भी ऐसी सैकड़ों मार्मिक घटनाएँ घटती रहती हैं। हम उनका अर्थ जान पायें तो देखें कि वस्तुतः माया-मोह के बंधनों में पड़ा जीव कितनी निकृष्ट योनियों में पड़ता और कष्ट भुगतता है ?

फ्रेडरिक डब्ल्यू० श्लूटर नामक एक जर्मनी अमरीका आकर बस गया। उसकी एक दादी थी जिसका नाम था कैथेरिना सोफिया विट, वह फ्रेडरिक से पूर्व ही १८७१ में ही अमरीका आकर बस गई थीं। यहीं इंडियाना राज्य के बुडबर्न नामक ग्राम में उन्होंने एक कृषक के साथ दुबारा विवाह कर लिया था। सोफिया विट के पति का एक बंगला यहाँ से चार-पाँच मील दूर खेतों में भी बना हुआ था। उसके पति प्रायः वहीं रहते थे। फ्रेडरिक किसी दूसरे शहर में नौकरी करता था, किंतु वह मन बहलाने के लिए कभी-कभी अपनी दादी के पास आ जाया करता था। वह अपना अधिकांश समय इस बंगले पर ही बिताया करता था।

जून सन् १९२५ की बात है, जबकि फ्रेडरिक यहाँ छुट्टियाँ बिताने आया हुआ था। एक दिन उसे शिकार करने की सूझी।

बंदूक लेकर बाहर निकला और कोई पक्षी या जीव-जंतु तो उसे नहीं दीखा, हाँ सामने ही एक चीड़ का वृक्ष था उसकी चोटी पर बने एक कोटर में एक वृद्ध कौवा बैठा हुआ था। फ्रेडरिक ने कौवे पर ही निशाना साध लिया पर अभी गोली छूटने ही वाली थी कि कौवे की दृष्टि उस पर पड़ गई सो वह बुरी तरह काँव-काँव करने और पंख फड़फड़ाने लगा।

उसकी यह आवाज सुनते ही फ्रेडरिक का चाचा (सोफिया का पति) दौड़ता हुआ आया और फ्रेडरिक की बंदूक नीचे करता हुआ बोला—यह क्या करते हो भाई—यह तुम्हारी दादी का पालतू कौवा है। इसे फिर कभी मत मारना।

कौवे की मैत्री एक विलक्षण बात है, पर यह एक अद्भुत सत्य कथा है। कौवा यद्यपि अधिकांश समय इस वृक्ष पर ही बिताता था पर कोई नहीं जानता रहस्य क्या था कि वह जब तक दिन में चार-छह बार सोफिया से नहीं मिल लेता था, तब तक उसे चैन ही नहीं पड़ता था। कौवे में इतना विश्वास शायद ही कहीं देखा गया हो, शायद ही किसी और से कौवे की इतनी गहरी दोस्ती जुड़ी हो।

सोफिया की आयु इस समय कोई ८५ वर्ष की थी। फ्रेडरिक खेतों से लौटकर घर पर आया और अपनी दादी के पास बैठकर बातें करने लगा। तभी उसने खिड़की की तरफ फड़फड़ की आवाज सुनी उसने सिर पीछे घुमाया वही कौवा था, जिसे उसने अभी थोड़ी ही देर पहले मारते-मारते छोड़ा था। कौवा एक बार तो चौंका पर जैसे ही सोफिया ने उसे पुचकारा कि दरवाजे से होकर कौवा भीतर आ गया और सोफिया की गोद में अनजान-अबोध बालक की भाँति लौटने लगा। कौवा निपट वृद्ध हो गया था। उसकी एक टाँग टूट गई थी। एक आँख भी जाती रही थी, पंख कुछ थे कुछ झड़ गये थे। सोफिया ने कहा—फ्रेडरिक, नहीं जानती किस

जन्म का आकर्षण है, जो कौवा के मेरे पास आये बिना न इसे चैन और न मुझे।

इस घटना के कोई दो वर्ष पीछे की बात है। फ्रेडरिक तब मिलिटरी में भरती हो गया था और अब वेस्ट पाइंट की इंजीनियर्स बैरक में रह रहा था। यह स्थान ब्रुडबर्मन, जहाँ उसकी दादी रहती थी, से कोई ५०० मील दूर था। एक रात जब फ्रेडरिक सो रहा था तब खिड़की पर कुछ फड़फड़ाने की आवाज सुनाई दी—होगा कुछ ऐसी उपेक्षा करके वह फिर सो गया, उसे क्या पता था कि जीवन के अनेक ऐसे क्षण मनुष्य को बार-बार किसी गूढ़तम जीवन रहस्य की प्रेरणा देते रहते हैं, पर हमारी उदासीनता ही होती है, जो आये हुए वह क्षण भी निरर्थक चले जाते हैं और हम जीवन की सूक्ष्म विधाओं से अपरिचित के अपरिचित ही बने रह जाते हैं।

फ्रेडरिक जब सबेरे उठा, तब उसने देखा एक कौवा भीतर घुस आया है और मरा पड़ा है। उसने पास जाकर देखा तो आश्चर्यचकित रह गया, क्योंकि यह कौवा वही था, जिसे उसने दो वर्ष पूर्व मारते-मारते छोड़ा था।

उसने कौवे की मृत्यु की सूचना पत्र लिखकर दादी के पास भेजी, पर उधर से उत्तर आया चाचा का। जिसमें लिखा था कि दादी का निधन हो गया है। जिस दिन से वे मरीं, वह कौवा दिखाई नहीं दिया।

कौवे की सोफिया से मैत्री, उनके निधन पर उसका फ्रेडरिक के पास जाना और मृत्यु की सूचना देना गहन रहस्य है, जिन पर मानवीय बुद्धि से कुछ सोचा नहीं जा सकता। संभवतः कोई और आद्य शंकराचार्य वहाँ उपस्थित होते तो कहते इस कौवे का सोफिया से पूर्व जन्म का कुछ संबंध रहा होगा, संभव है वह उसका पति रहा हो। उसकी मृत्यु पर भी मोह-ममता कम न हुई हो जिसे पूरी करने के लिए अपने नाती फ्रेडरिक के पास पहुँचा होगा और वहाँ शीत सहन न करने के कारण मर गया होगा। यही सब

संसार का माया-मोह है, जो जीव को विभिन्न योनियों में भ्रमण कराता रहता है। भौतिक ताप सहन करते हुए भी मनुष्य इस तरह के आध्यात्मिक सत्यों की बात क्षण भर को सोचता नहीं, जबकि कुछ न कुछ रहस्य इन कथानकों में रहता अवश्य है।

आत्मसत्ता द्वारा स्वयं को शाप और वरदान

ऐसे असाधारण उदाहरण यानी अपवाद बहुत अधिक नहीं हैं। वे सामान्य नियम नहीं हैं तो इसका यह अर्थ नहीं कि वे यों ही, संयोग मात्र हैं। प्रकृति का प्रत्येक कार्य-व्यापार सकारण है।

अन्य जीवों में पाये जाने वाले असामान्य कोटि के मानवी संस्कार इस तथ्य के प्रतिपादक हैं कि सामान्यतः मनुष्य निम्नतर योनियों में कभी जाता नहीं। स्वामी विवेकानंद का यह कथन पूर्ण सत्य है कि मानवीय चेतना इतनी उत्कृष्ट एवं परिष्कृत कोटि की है कि उसका निचली योनियों में जाना लगभग असंभव है। तब भी यदि कोई मनुष्य अपनी संकल्प शक्ति का इतना भीषण दुरुपयोग करे कि वह मानवीय सद्गुणों से निरंतर दूर ही हटता जाए, मानवीयत की संज्ञा से जुड़े भाव-स्पंदनों को कुचलता ही रहे और पाशविक प्रवृत्तियों को ही अपनाकर उन्हीं को अपना साध्य, इष्ट, लक्ष्य समझ ले तो किया क्या जाए ? ऐसे नर-पशुओं, नर-कीटकों का निम्नतर योनि में जाना उचित भी है, स्वाभाविक भी, परंतु इस कोटि का पतन कम ही मनुष्यों का हो पाता है। जिस प्रकार देवोपम-स्तर बहुत थोड़े लोग ही प्राप्त कर पाते हैं, उसी प्रकार पुनः नीचे जाने को विवश कर देने वाली हीनतर प्रवृत्तियाँ उससे भी कम ही लोग पूरी तरह अपनाते हैं। अधिकांशतः लोग अपनी शक्तिभर ऊपर उठने का ही प्रयास करते हैं, क्योंकि आनंद प्राप्त करने की प्रत्येक जीवात्मा की मूलभूत इच्छा होती है और मनुष्य योनि में आने तक जीवात्मा इतनी विकसित तो हो चुकी होती है कि वह आनंद के नाम पर नारकीय दुःखों को ही अपनाने में न जुट जाएँ। फिर जब कभी वह मोह तथा वासना के आवेग में उधर अधिक

झुकता भी है तो उसका मानवीय अंतःकरण उसे ही कचोटने लगता है वह छटपटाने लगता है और तब तक सामान्य स्थिति में नहीं आ पाता, जब तक प्रायश्चित्त और भूल-सुधार कर वह पुनः सामान्य एवं सहज मानवीय-स्तर को प्राप्त न कर ले, उसी राह पर चलने न लगे जो मनुष्यता के अनुकूल है।

इस प्रकार अपवाद-स्वरूप ही लोग मनुष्य बनने के बाद निचली योनियों में जाते हैं। श्रीमद्भगवद् गीता का यह कथन जन्मांतर स्थिति को भली भाँति स्पष्ट करता है—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्य गुण वृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः।।

अर्थात सात्विक वृत्ति वाले लोग मरणोपरांत उच्चतर लोकों को जाते हैं, मध्यम स्तर के रजोगुणी मनुष्य पुनः उसी योनि में ही जन्म लेते हैं और जघन्य कर्मों, दुष्प्रवृत्तियों में लिप्त तामसिक निचली योनियों में जाते हैं। कठोपनिषद् में नचिकेता यमराज से पूछते हैं—'मरने के बाद मनुष्य की गति क्या होती है ?' यमराज उत्तर देते हैं—

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेता वुपाश्रितो।।

—द्वितीय बल्ली ५

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।

—द्वितीय बल्ली ६

हे नचिकेता ! कोई भी देहधारी प्राण या अपान से ही जीवित नहीं रहता किंतु जिसमें यह दोनों आश्रित हैं (कारण शरीर) उसी के आधार पर जीवित रहते हैं। अगले मंत्र में मृतात्मा देहांत के पश्चात् कैसे रहता है, उस पर प्रकाश डाला है। कहा है, अपने-अपने कर्मों के अनुसार जिसने श्रवण द्वारा जैसा भाव प्राप्त

किया, उसके अनुसार कितने ही जीवात्मा देह धारण के लिए विभिन्न योनियों को प्राप्त होते हैं और अनेकों जीवात्मा अपने कर्मानुसार वृक्ष, लता, पर्वत आदि स्थावर शरीरों को प्राप्त होते हैं।

स्पष्ट है कि अगले जन्म में कैसी, किस स्तर की योनि मिलेगी ? वह मनुष्य के अपने ही हाथ में है। तभी तो गीता में कहा है—

'आत्मैव हयात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मना'

अर्थात, 'मनुष्य की आत्मसत्ता आप ही अपनी मित्र और आप ही अपनी शत्रु होती है।'

आत्म-सत्ता के संकल्प एवं कर्म ही प्रत्येक मनुष्य की प्रगति या पतन के आधार पर बनते हैं। मनुष्य की अपनी इच्छाशक्ति एवं उसके कर्म ही जीवन-प्रवाह के नये-नये मोड़ों का कारण बनते रहते हैं। यह इच्छा-शक्ति आत्मसत्ता से सदैव संबद्ध रहती है।

ब्राजील वासी श्रीमती इडा लोरेन्स को 'सियान्स' (मृतात्माओं आह्वान बैठकें) में तीन बार उनकी पुत्री इमिलिया का मृतात्मा ने संदेश दिया कि मैं अब तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लूँगी। इमीलिया को अपने लड़की होने से घोर असंतोष था। वह अक्सर कहती थी कि यदि पुनर्जन्म सचमुच होता है, तो अगले जन्म में मैं पुरुष बनूँगी। उसने अपने विवाह के सभी प्रस्ताव ठुकरा दिये और २० वर्ष की आयु में विष खाकर मर गई। बाद में 'सियान्स' में इमिलिया ने अपनी माँ से अपनी आत्म-हत्या पर पश्चात्ताप व्यक्त किया। साथ ही पुत्र रूप में अपने पुनर्जन्म की इच्छा व्यक्त की।

लिंग-परिवर्तन भी भावसत्ता के ही अनुसार

योनि-परिवर्तन ही नहीं, लिंग का कारण भी इच्छा शक्ति ही होती है। श्रीमती इडा लोरेन्स अब तक १२ बच्चों को जन्म दे चुकी थी और अब संतान की उन्हें संभावना नहीं थी। पर इमिलिया की मृतात्मा का संदेश सत्य निकला। अपनी मृत्यु के डेढ़ वर्ष बाद

इमिलिया ने पुत्र रूप में पुनर्जन्म लिया। उसका नाम रखा गया—पोलो।

पोलो की रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ इमिलिया जैसी ही थीं। सिलाई में इमिलिया निपुण थी, तो पोलो भी बिना सीखे ही ४ वर्ष की आयु में सिलाई में दक्ष हो गया। इमिलिया की ही तरह पर्यटन पोलो को भी अति प्रिय था। इमिलिया एक खास ढंग से डबल रोटी तोड़ती थी। पोलों में भी वही अंदाज पाया गया। पोलो अपनी बहिनों के साथ कब्रिस्तान जाता, तो सिर्फ इमिलिया की कब्र पर फूल चढ़ाता। वह भी यह कहते हुए कि—'मैं अपनी कब्र की देखभाल कर रही हूँ।' शुरू में पोलो की बातें लड़कियों जैसी ही थीं। उसके व्यक्तित्व में अंत तक नारी तत्त्वों की प्रधानता रही। अपनी बहिनों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के प्रति उसमें लगाव नहीं था और वह अविवाहित ही रहा।

मनोवैज्ञानिकों और परामनोवैज्ञानिकों ने उसका परीक्षण किया। उसमें स्त्री सुलभ प्रवृत्तियाँ पाई गईं।

इसी तरह श्री लंका की एक बालिका ज्ञानतिलक ने दो वर्ष की आयु में बताया कि पूर्व जन्म में वह लड़का थी। पूर्व जन्म वाले स्थान से एक दिन वह गुजरी तो सहसा उसके दिमाग में कौंधा कि वह पूर्व जन्म में यहीं पर थी। उसने अपने पूर्व जन्म की कई बातें बताईं जो सत्य निकलीं। ज्ञानतिलक का पूर्व जन्म का नाम तिलकरत्न था। इमिलिया को लड़का होने की तीव्र इच्छा थी, तो तिलकरत्न में नारी व्यक्तित्व की प्रधानता थी और पुनर्जन्म में वह लड़की ही बनी। साथ ही पुरुष बनी इमिलिया में नारी-प्रवृत्ति अवशिष्ट थी, तो नारी बने तिलकरत्न में पुरुष प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं।

इच्छाशक्ति के अनुरूप ही संस्कार सूत्र (जीन्स) में परिवर्तन आ जाता है, जीन्स कभी नष्ट नहीं होते, यदि उनमें चेतना का अंश सिद्ध किया जा सके तो यह निश्चयपूर्वक विज्ञान द्वारा भी प्रमाणित किया जा सकता है कि शरीर नष्ट हो जाने पर भी इच्छा शक्ति का

कभी अंत नहीं होता। मृत्यु के समय एक या अनेक इच्छाएँ बलवान हों तो कहा जा सकता है कि अपनी इच्छाओं के वश में बँधा हुआ होने के कारण ही मनुष्य दूसरी-दूसरी योनियों में भटकता रहता है।

अंतिम इच्छाओं के अनुसार परिवर्तित जीन्स जिस जीव के जीन्स से मिल जाते हैं, उसी ओर वे आकर्षित होकर वही योनि धारण कर लेते हैं। ८४ लाख योनियों में भटकने के बाद वह फिर मनुष्य शरीर में आता है। गर्भोपनिषद् में इस बात की पुष्टि हुई है—

पूर्व योनि सहस्त्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया।
आहारा विविधा मुक्तः पीता नानाविधाः।
स्तना: .... ।
स्मरति जन्म मरणानि न च कर्म शुभाशुभं
विन्दति।।

अर्थात—उस समय गर्भस्थ प्राणी सोचता है कि अपने हजारों पहले जन्मों को देखा और उनमें विभिन्न प्रकार के भोजन किये, विभिन्न योनियों के स्तन पान किये। अब जब गर्भ से बाहर निकलूँगा, तब ईश्वर का आश्रय लूँगा। इस प्रकार विचार करता हुआ प्राणी बड़े कष्ट से जन्म लेता है पर माया का स्पर्श होते ही गर्भ ज्ञान भूल जाता है, शुभ-अशुभ कर्म लोप हो जाते हैं। मनुष्य फिर मनमानी करने लगता है और इस सुरदुर्लभ शरीर के सौभाग्य को भी गँवा देता है।

सौभाग्य से हीकल्स की अपनी अगली व्याख्या से ही इस बात का समर्थन हो जाता है। उन्होंने भ्रूण-विज्ञान (एंब्रियोलॉजी) में एक प्रसिद्ध सिद्धांत दिया—"आंटोजेनी रिपीट्स फायलोजेनी" अर्थात चेतना गर्भ में एक बीज कोष में आने से लेकर पूरा बालक बनने तक, सृष्टि में या विकासवाद के अंतर्गत जितनी योनियाँ आती हैं, उन सब की पुनरावृत्ति होती है। प्रति तीन सेकिन्ड से कुछ कम के बाद भ्रूण की आकृति बदल जाती है। स्त्री के प्रजनन कोष (ओवम) में प्रविष्ट होने के बाद पुरुष का बीज-कोष (स्पर्म) १ से २

२ से ४, ४ से ८, ८ से १६, १६ से ३२, ३२ से ६४ इस तरह कोषों में विभाजित होकर शरीर बनता है।

९ माह १० दिन के लगभग की अवधि गर्भ धारण की मानी गई है, इस अवधि में लगभग २४१९२००० सेकिंड होते हैं, तीन सेकिंड से कुछ कम में आकृति बदलने का अर्थ भी ८०६०६६६ (लगभग ८४ लाख ही) विभिन्न आकृतियों का परिवर्तन आता है। यह ८४ लाख योनियाँ एक प्रकार से जीव जिन-जिन परिस्थितियों में रहकर आ चुका है, उनका छाया चित्रण होता। परमात्मा ने यह व्यवस्था इस दृष्टि से की है कि मनुष्य जन्म लेने से पूर्व अपना यह लक्ष्य सुदृढ़ कर ले कि मुझे संसार में किसलिये जाना है ?

जब अपना लक्ष्य मनुष्य की भाव-सत्ता के सम्मुख स्पष्ट होता है तो वह उसी दिशा में बढ़ता ही चला जाता है।

मनुष्य की मूलभूत भावसत्ता ही उसकी गति का पथ और स्वरूप निर्धारित करती है। जब यह भाव-सत्ता भौतिक भोगों को ही अपना लक्ष्य मान बैठती है, तो उसे रोग-दुःख और अशांति के अंतहीन मरुस्थल में भटकते रहना होता है। परंतु जब वही भाव-सत्ता चेतन आत्मा के स्वरूप को समझकर उसी से जुड़े रहने की सार्थकता समझ जाती है, तो वह प्रगति की दिशा में बढ़ती ही चली जाती है। महत्त्व अपने प्रति अपनी ही भावना का, आंतरिक श्रद्धा का है। गीता में कहा गया है—

"श्रद्धामयोऽयं पुरुषो, योयच्छ्रद्धः स एवसः।"

अर्थात जीवात्मा श्रद्धामय है, जिसकी अपने प्रति जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही उसी श्रद्धा-भाव जैसा ही हो जाता है। भाव सत्ता के अस्तित्त्व और उसकी शक्ति का प्रमाण है लिपजिग जर्मनी का न्यायाधीश "बेनेडिक्ट कारजो" जिसका जन्म १६२० में हुआ और मृत्यु १६६६ में।

कारजो दुनिया का भयंकरतम न्यायाधीश था। अपनी सर्विस की लंबी अवधि में उसने ३० हजार से अधिक लोगों को फाँसी की

सजा दी, सजा देने के बाद वह फाँसी होते देखने स्वयं भी जाता था। साथ में कुत्ता भी ले जाता था और फाँसी से मरे हुए मृतक की लाश कुत्ते से नुचवाता था। ऐसा कोई दिन नहीं गया उसके कार्यकाल में जबकि उसने कम से कम ५ व्यक्तियों को फाँसी न लगवाई हो। एक दिन एक दुःखी मनुष्य की आत्मा कराह उठी। फाँसी पर चढ़ने के पूर्व उसने शाप दिया—तेरी कुत्तों जैसी मृत्यु होगी, जिस दिन तेरा कुत्ता मरेगा उसी दिन तू भी मर जायेगा और कितने ही जन्म तू बार-बार कुत्ता होकर मरेगा।

अभी शाप दिये कुछ ही दिन बीते थे कि एक दिन उसके पालतू कुत्ते को एक पागल कुत्ते ने काट लिया, फिर उसी के कुत्ते ने उसे काट लिया। कुत्ता मर गया, उसके कुल तीन घंटे पीछे कुत्तों की तरह भौंक-भौंक कर उसकी भी मृत्यु हो गई। यह तो पता नहीं अगले जन्म में वह क्या हुआ ? पर यह आश्चर्य तो सभी को हुआ कि निर्दोष आत्मा के शाप—जिसे भावनाओं का आंतरिक विस्फोट कहना ज्यादा उपयुक्त है—ने उसे किस तरह नारकीय परिस्थितियों में जा धकेला ?

वस्तुतः आत्मसत्ता में ऐसी ही अकूत सामर्थ्य विद्यमान है। वह जब उच्चस्तरीय प्रगति के लिए भाव-विस्फोट करती है तो उसके परिणाम वरदान के रूप में सामने आते हैं। निम्नतर गतिविधियों के लिए जब भाव विस्फोट होते हैं, तो उसका फल शाप के रूप में सामने आता है।

ये शाप-वरदान दूसरों के लिए तो यदा-कदा ही फलीभूत होते हैं, किंतु, अपने लिए आत्मा में जिस प्रकार के भावों का आंतरिक विस्फोट होता रहता है, उनका अपने को ही परिणाम निरंतर मिलता रहता है। श्रेष्ठ प्रयोजनों में लगने पर आत्मसत्ता स्वयं को ही वरदान देती रहती है और उसे निकृष्ट गतिविधियों में नियोजित करने पर वह स्वयं को ही धिक्कार एवं शाप देती है। आत्मोत्कर्ष या आत्मिक पतन के देव योनि अथवा पशु-योनि के वर्णन के जिम्मेदार हम आप ही हैं।

☐ ☐

अध्याय ७

पुनर्जन्म—पुनरावर्तन नहीं यात्रा का अगला चरण

माता के गर्भ में शयन करते हुए ऋषि वामदेव विचार करते हैं—"अब मैं देवताओं के अनेक जन्मों को जान चुका हूँ। जब तक मुझे तत्त्व ज्ञान नहीं मिला था, मैं संसार में पाप कर्मों से उसी तरह घिरा था, जिस तरह पक्षी को पिंजरे में बंद कर दिया जाता है।" पूर्वजन्मों का स्मरण करते हुए ऋषि वामदेव ने शरीर धारण किया और उन्नत कर्म करते हुए स्वर्ग को पहुँच गये।

यह कथा ऐतरेयोपनिषद् के द्वितीय अध्याय के प्रथम खंड में है। शास्त्रकार ने इस अध्याय की पूर्वपीठिका में यह बताता है कि पिता के पुण्य कर्मों के निमित्त पिता की ही आत्मा पुत्र रूप में प्रतिनिधि बनकर जन्म लेता है। पुत्र के जन्म लेने पर पिता के पाप कर्म कम होने लगते हैं, क्योंकि कोई भी पिता अपने पुत्र को बुरे कर्म करते देखकर प्रसन्न नहीं होता, वह यही प्रयत्न करता है कि जिन बुरे कर्मों के कारण मुझे कष्ट हुए हैं, उनका प्रभाव बच्चे पर न पड़े। जितने अंश में वह बच्चे का सुधार कर सकता है, उतना वह अपना भी सुधार कर लेता है और तब उसका दूसरा जन्म अर्थात ऐसे संकल्प लेकर जन्म होता है कि अब मैं बुरे कर्म नहीं करूँगा, जिससे संसार में शांतिपूर्वक परमात्मा का साधन करता हुआ, स्वर्ग की प्राप्ति करूँगा। यह संकल्प संस्कार बनकर उद्घाटित होते हैं और जीव अपनी मुक्तावस्था को प्राप्त कर लेता है। जैसा ऋषि ने बताया है।

पुनर्जन्म, गर्भ में इस प्रकार का संकल्प, पिता के प्रतिनिधि रूप में पिता का ही पुत्र और इन सबका हेतु कर्मफल यह सब बातें

कुछ अटपटी-सी लगती हैं। आज के विज्ञान-बुद्धि लोगों के गले नहीं उतरती और यही कारण है कि लोग कर्मों में गुणावगुण की संधि और पाप के फल—पश्चात्ताप की बात अंगीकार नहीं करते। कर्मफल पर विश्वास न करने का फल ही आज पाप, अनय और भ्रष्टाचार के रूप में फैला है।

गरुड़ पुराण में ऐसी ही आख्यायिका आती है, जिसमें बताया गया है कि यमलोक पहुँचने पर चित्रगुप्त नाम के यम-प्रतिनिधि सामने आते हैं और उस व्यक्ति के तमाम जीवन में किये हुए कर्मों का जिन्हें वह गुप्त रीति से भी करता रहा, चित्रपट की भाँति दृश्य दिखलाते हैं, यमराज उन कर्मों को देखकर ही उन्हें स्वर्ग और नरक का अधिकार प्रदान करते हैं। शास्त्रकार इसी संदर्भ में यह भी बताते हैं कि हनन की हुई आत्मा (अर्थात बुरे कर्मों से उद्विग्न और अस्वस्थ मनःस्थिति) नरक को ले जाती है और संतुष्ट हुई आत्मा (नेक कर्मों से उल्लसित उत्फुल्ल और प्रसन्न मनःस्थिति) दिव्य लोक प्रदान करती है।

चित्रगुप्त जैसी कोई व्यवस्था का होना काल्पनिक-सा लगता है, किंतु आधुनिक शोधों ने उपरोक्त आलंकारिक कथानक में बड़ी ही महत्त्वपूर्ण सचाई को ढूंढ निकाला है। डॉ० बी० वेन्स ने सूक्ष्म दर्शक की सहायता से यह ढूँढ निकाला है कि मस्तिष्क में भरे हुए ग्रे मैटर (भूरी चर्बी जैसा पदार्थ) के एक-एक परमाणु में अगणित रेखायें पाई जाती हैं। विस्तृत विश्लेषण करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जो व्यक्ति कर्मठ, क्रियाशील, सात्विक, सबसे प्रेम करने और सबका भला चाहने वाले होते हैं, उनके मस्तिष्क की यह रेखाएँ बहुत विस्तृत और स्वच्छ थीं, पर जो आलसी, निकम्मे तथा दुष्ट प्रकृति के थे, उनकी रेखाएँ बहुत छोटी-छोटी थीं। मांसाहारी व्यक्तियों की रेखाएँ जले हुए बाल के सिरे की तरह कुंठित और लुंज-पुंज थीं।

मस्तिष्क के विश्व प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक डॉ० विल्डर पेनफील्ड ने मस्तिष्क में एक ऐसी पट्टी का पता लगाया है, जो रिकार्डिंग पद्धति के आधार पर काम करती है। उनके अनुसार यह पट्टी मस्तिष्क के उस भाग में है, जिसके बारे में अभी तक कुछ विशेष पता नहीं लगाया जा सका।

स्मरण की प्रक्रिया के बारे में डॉ० विल्डर पेनफील्ड का कहना है कि वह काले रंग की दो पट्टियों में निहित है। यह पट्टियाँ लगभग २५ वर्ग इंच क्षेत्रफल की होती हैं। मोटाई इंच के दसवें भाग जितनी होती है। दोनों पट्टियाँ मस्तिष्क के चारों ओर लिपटी रहती हैं, यह पूरे मस्तिष्क को ढके रहती हैं। इन्हें 'टंपोरल कोरटेक्स' कहा जाता है और यह कनपटियों के नीचे स्थित होती हैं। जब कोई पुरानी बात याद करने का कोई प्रयत्न करता है, तो स्नायुओं से निकलती हुई विद्युत धारायें इन पट्टियों से गुजरती हैं, जिससे वह घटनाएँ याद आ जाती हैं। डॉ० पेनफील्ड ने मिरगी के कई रोगियों के मस्तिष्क का आपरेशन करते समय इन पट्टियों में कृत्रिम विद्युत-धारायें प्रवाहित कीं और यह पाया कि रोगियों की काफी पुरानी स्मृतियाँ ताजी हो गईं। एक रोगिणी को इस पट्टी पर हल्का करेंट दिया गया, तो वह एक गीत गुन-गुनाने लगी। वह गीत उसने पाँच वर्ष पहले सुना था। करेंट हटाते ही वह गीत फिर भूल गई, फिर करेंट लगाया तो फिर गुन-गुनाने लगी।

अब डॉ० पेनफील्ड स्वयं भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जाग्रत अवस्था में व्यक्ति जैसी भी घटनाएँ देखता, सुनता, करता रहता है उसका विस्तृत रिकार्ड मस्तिष्क में बना रहता है। यदि कुछ नये प्रयोग विकसित किये जा सकें तो मस्तिष्क को इतना सचेतन बनाया जा सकेगा कि वह बहुत काल की स्मृतियों को ताजा रख सकेगा। तब संभवतः इस जीवन से अनंतर पूर्व-जन्मों की स्मृतियों की भी [illegible] संभव हो जायेगी।

यह थी खोज किंतु कर्मफल उससे भी बहुत कठोर, सुनिश्चित और अंतर्व्यापी है, इसलिये उस पर शीघ्र तो लोग विश्वास नहीं करते पर यह सारा संसार उससे प्रभावित है और एक दिन सारा संसार उसे मानने को और सत्कर्म करने को विवश होगा। उत्पीड़न और अत्याचार के सभी कर्म मनुष्य को कई जन्मों तक सताते हैं। उनका परिमार्जन आसानी से नहीं हो पाता।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए कि मन भी एक प्रकार का सूक्ष्म विद्युत है और वह मस्तिष्क की उस पट्टी में जहाँ याददाश्तें छिपी हैं, अपने आप चक्कर लगाया करता है, इस चक्कर से उसकी मानसिक बनावट के अनुरूप जैसे अच्छे-बुरे विचार होते हैं, वह उभरते हैं और मनुष्य उसी प्रवाह में काम करने लगता है। उसे प्रकृति की प्रेरणा मानकर कुछ लोग यह भूल करते हैं कि जो कुछ गंदा, फूहड़ विचार उठा वही करने लगते हैं, पर जो लोग कर्मफल पर विश्वास कर लेते हैं, वे बुराइयों और बुरे विचारों के प्रति सावधान रहने लगते हैं और जीवन में अच्छाइयों का प्रसार करते हुए प्रसन्न रहने लगते हैं।

डॉ० पेनफील्ड के यहाँ एक मिरगी का रोगी आता था। उसे मिरगी आने से पहले एक भयानक सपना आया करता था कि वह किसी उजाड़ और डरावने मकान के दरवाजे पर खड़ा है। कोई उल्लू भयंकर आवाज में बोलता है। वह डरकर दरवाजा खोलने का प्रयत्न करता है। उसे मालूम था कि दरवाजा खुलते ही कोई ऐसा भयानक दृश्य सामने आता है कि उसे देखते ही उसे मिरगी आ जाती है, इसलिए वह बहुत प्रयत्न करता कि दरवाजा न खोले, पर अज्ञात शक्ति उसे वैसा करने को विवश कर देती और उसे मिरगी आ जाती, जिसमें पड़ा वह घंटों तड़पता रहता।

सचेत अवस्था में भी जब इस रोगी को डॉक्टर करेंट लगाते तो उसके मुख मंडल पर भय की रेखाएँ छा जातीं। डॉक्टर ने उस

स्थान का पता लगा लिया और उतने अंश का आपरेशन करके निकाल दिया, जिससे रोगी अच्छा हो गया।

विज्ञान की यह शक्ति कर्मफल पर विस्तृत प्रभाव डालने वाली है। हम जिसे मन कहते हैं, वह एक प्रकार की विद्युत शक्ति है और वह उस स्मृति पट्टी पर अपने आप ही घूमता रहता है। स्वप्नावस्था में भी यह क्रिया बंद नहीं होती, उसे जहाँ पूर्व-जन्मों की उन स्मृतियों से गुजरना पड़ता है, जिसमें उत्पीड़न, भयंकरता, दंड, छटपटाहट, चोरी, दुष्टता जैसे कुकर्मों की रेखाएँ होती हैं, तो उसे तीव्र वेदना और अकुलाहट होती है। यही नहीं उस व्यक्ति में हीनता का अंतर्भाव बढ़ता रहता है और ऐसा व्यक्ति जीवन में साधन और सुविधाएँ रहते हुए भी सुखी और शांत नहीं रहता।

मिरगी के उस रोगी के बारे में यदि यह कहा जाये कि उसने पूर्व जन्म में धन या और किसी लोभ में किसी के घर दरवाजा खोलकर किसी की हत्या की होगी, तो अतिशयोक्ति न होगी। ऐसे भयंकर दृश्यों के अंकन भी वैसे ही क्षिप्र, टेढ़े-मेढ़े और भयानक होते हैं, जब वह स्मृति उस व्यक्ति को आती होगी तो भय से मूर्च्छा आ जाती होगी। शरीर की छोटी से छोटी खुजली से लेकर दमा, स्वास, क्षय, पक्षाघात, कुष्ठ आदि के कारण शरीर के विजातीय द्रव्य भले ही कहे जायें पर उन विजातीय द्रव्यों के उत्पादन का कारण मन और मन को पूर्व-जन्मों के कर्मों का फल ही कहना अधिक तर्कसंगत है। कोई भी व्याधि एवं पीड़ा कर्मफल के अतिरिक्त नहीं हो सकती। फिर वे इस जन्म के हों या पूर्व जन्म के।

भगवान अपनी इच्छा से किसी को दंड नहीं देते। कर्मफल ही दंड देते हैं। भगवान तो बार-बार मनुष्य-जीवन के रूप में जीव को वह अवसर प्रदान करते रहते हैं, जिससे वह विगत पापों का प्रायश्चित्त कर अपने शुद्ध-बुद्ध और निरंजन स्वरूप को प्राप्त कर ले, जैसा कि ऋषि वामदेव ने अपने को उसी प्रकार पाप से

जीवन्मुक्त कर लिया, जैसे साँप केंचुली से छूट जाता है और परम स्वतंत्रता अनुभव करने लगता है।

'साइकिकल रिसर्च सोसायटी' तथा परामनोविज्ञान की अन्य शोध-संस्थाओं ने अपनी खोजों में पुनर्जन्म-प्रतिपादक अनेक अद्यतन-आधार जुटाये हैं। इनसे जहाँ जीवन के बारे में भारतीय तत्त्वदर्शियों की मान्यताएँ खरी सिद्ध हुई हैं, वहीं पुनर्जन्म और कर्मफल संबंधी प्रतिपादन भी नये सिरे से प्रमाणित हुआ है तथा संस्कारों का सातत्य और उनकी क्रमबद्धता सामने आयी है।

पुनर्जन्म का अभिप्राय यह नहीं कि फिर नये सिरे से जीवन-विकास में जुटना होगा। यदि हर बार व्यक्ति वैसी ही आंतरिक स्थिति में पैदा हो; मन, बुद्धि, अंतःकरण के नये सिरे से विकास हेतु प्रयास शुरू करना पड़े; मृत्यु के पूर्व तक अपने गुणों और अपनी क्षमताओं को चाहे जितना बढ़ा लेने और परिपक्व बना लेने पर भी अगले जीवन में यदि उनकी कोई उपयोगिता न रहे, तब पुनर्जन्म होने पर भी उसका कोई दार्शनिक और नैतिक महत्त्व नहीं रह जायेगा। पुनर्जन्म का अर्थ भौतिक तत्त्वों के एक निश्चित क्रम-संघात का पुनरावर्तन हो और स्मृति-कोषों का कोई अंश-विशेष ही उसका एकमात्र सातत्य—सूत्र हो, तब पुनर्जन्म की प्रक्रिया की मानव-जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं रह जायेगी, किंतु वस्तुस्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। अगले जीवन में चेतना का वह स्तर जन्मतः उपलब्ध होता है, जो वर्तमान जीवन में विकसित कर लिया गया हो। इस प्रकार प्रगति का तार टूटता नहीं और मानवी चेतना सतत विकसित होती चलती है।

भौतिक दृष्टि से पुनर्जन्म एक पुनरावर्तन जैसा ही प्रतीत होने पर भी, वह वस्तुतः जीवन-यात्रा का अगला चरण है। विकास का अगला क्रम है। पुनर्जन्म सतत गतिशीलता का अगला आयाम है। शरीर की दृष्टि से तो उस नये जीवन में भी शैशव, यौवन, जरा, मृत्यु का क्रम पूर्ववत ही रहता है। देह-धर्म तो उसी क्रम से चलता

है, किंतु मन, बुद्धि अंतःकरण में समायी चेतना जिस स्तर तक विकसित हो जाती है, वहाँ से पीछे नहीं लौटती, प्रयत्न और साधन के अनुरूप आगे ही बढ़ती है।

पाप हो या पुण्य, उसका फल उसकी मात्रा व गुण के आधार पर ही मिलता है। न तो कोई भी कर्म बिना किसी प्रतिक्रिया—परिणाम के रहता और न ही किसी भी कर्म का परिणाम अनंत होता है। जहाँ कर्मफल भोगना अनिवार्य है; वहीं यह भी निश्चित है कि पाप हो या पुण्य, अपनी गुरुता या लघुता के अनुसार उसके परिणामों का भी अंत होता है। तब अपनी अंतःचेतना में संचित-संकलित स्मृतियों, गुण धर्म, संस्कारों और सामर्थ्य के साथ आत्मा पुनः नये शरीर में अवतरित होती है। विगत जीवन में अर्जित-उपलब्ध शिक्षाएँ-दिशाएँ नये जीवन की प्रवृत्ति-प्रेरणाएँ बनती हैं और विकास पथ पर आगे बढ़ने के आधार प्रस्तुत करती हैं। इसीलिए मनुष्य-योनि को कर्मयोनि कहा गया है। प्रत्येक मनुष्य जहाँ अपनी अंतःप्रकृति के गुण-धर्म-स्वभाव से प्रेरित होता है, वहीं वह अपने विवेक से इन प्रेरणाओं पर अनुशासन-नियंत्रण भी स्थापित कर सकने में समर्थ है। तपश्चर्या, साधना द्वारा वह अपनी अंतःप्रकृति का परिष्कार कर सकने, उसे नयी विशेषताओं—विभूतियों से संपन्न बना सकने में भी सक्षम है पुनर्जन्म के शास्त्रीय सिद्धांतों से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि कोई प्राणी बार-बार इसी जगत में जन्म ले, यह आवश्यक नहीं। अनंत ब्रह्मांड के किसी भी ऐसे लोक में वह जन्म ग्रहण कर सकता है, जहाँ जीवंत प्राणियों का निवास हो और जो लोक उसकी सूक्ष्म इंद्रियों तथा चेतना-स्तर के अनुरूप हो।

पुनर्जन्म के संबंध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यही है कि उससे इस जन्म में अर्जित विकसित प्रवृत्तियों का प्रभाव अगले जीवन में भी प्रमाणित होता है। पुराणों में पुनर्जन्म की जो कथाएँ वर्णित हैं, उनमें भी चेतना-स्तर का सातत्य ही दिग्दर्शित है।

संस्कारों का महत्त्व प्रतिपादित करने वाली ये पुराकथाएँ हमारे मनीषी पूर्वजों ने इसी उद्देश्य से संकलित की हैं, जिससे व्यक्ति कर्मफल की अनिवार्यता के सिद्धांत को भलीभाँति समझकर सत्प्रवृत्तियों का तत्काल सत्परिणाम न दिखने पर भी हतोत्साहित न हो और श्रेयस् के पथ पर पुरुषार्थ, कौशल, साहस एवं धैर्य के साथ बढ़ता रहे।

पद्मपुराण के अनुसार सोम शर्मा नामक तपस्वी साधक हरिहर-क्षेत्र में साधना-निरत थे। उनके जीवन का अंतिम समय निकट था, तभी दैत्यों की एक टोली वहाँ पहुँची और भयानक उपद्रव वहाँ किया। इस प्रकार अंतकाल में उनके स्मृति-पटल पर दैत्यों की यह छवि अंकित हो गई। सात्विक प्रकृति के साधक वे थे ही, उनका सूक्ष्म शरीर मृत्यु के तत्काल बाद दैत्यराज हिरण्यकशिपु की पत्नी कयाधु में प्रविष्ट हुआ। प्रहलाद के रूप में वे प्रकट हुए। जन्मतः ही उनकी अंतःचेतना परिष्कृत-उदात्त थी। दैत्य-दुष्प्रवृत्तियों के प्रति उनमें प्रबल विरोध भाव भी था। यही बालक प्रहलाद अपनी तपश्चर्या से भगवान के नृसिंहावतार का कृपाभाजन और दानवराज हिरण्यकशिपु के नाश का कारण बना।

स्कंदपुराण में बलि की कथा के द्वारा सत्प्रवृत्तियों के क्रमिक अभिवर्धन का सत्परिणाम गिनाया गया है। देव ब्राह्मण निअंक जुआरी था, पर साथ ही उसमें दान की उदार प्रवृत्ति भी विद्यमान थी। एक बार जब जुए में उसने पर्याप्त धन कमा लिया, तो मद्यपान कर एक वेश्या के घर की ओर चला। मार्ग में मूर्च्छित हो गिर पड़ा। होश आने पर ग्लानि और प्रायश्चित्त-भावना से वह भर उठा। उसने अपने धन का एक अंश शिव-प्रतिमा को समर्पित कर दिया।

उस दिन से शिवत्व के प्रति यह आकर्षण उसमें उभरता ही गया। मृत्यु के उपरांत उसे अपने अल्प पुण्य कर्मों के फलस्वरूप तीन घड़ी के लिए स्वर्ग का शासन प्राप्त हुआ। तब तक

सत्प्रवृत्तियों का महत्त्व वह समझ चुका था। स्वर्ग के भोगों की ओर उसकी रंचमात्र रुचि नहीं जगी। उल्टे इस पूरी तीन घड़ी तक वह स्वर्ग की बहुमूल्य वस्तुएँ सत्पात्र श्रेष्ठ ऋषियों को लगातार दान करता रहा। इससे उसकी पुण्य-प्रवृत्ति और गहरी हुई। अगले जन्म में वह महादानी बलि बना।

आधुनिक अनुसंधानों ने भी संस्कारों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। फ्रांस में जे-दंपत्ति के यहाँ एक बच्ची पैदा हुई—थिरीज गे। तीन माह की आयु में उसने बोलना शुरू किया परन्तु अपने जीवन में पहला शब्द उसने अपनी मातृ-भाषा फ्रेंच में नहीं, एक ऐसी भाषा में बोला, जो न तो माँ जानती थीं, न पिता। उन लोगों ने वह शब्द डायरी में अपनी बुद्धि से नोट किया—"अहस्यपाह।" वे इस विचित्रता पर हँसते रहे।

परामनोवैज्ञानिक मेयर ने अपनी पुस्तक "ह्यूमन पर्सनालिटी" में अमरीका की पेन्सवेनिया यूनिवर्सिटी में असीरियन-सभ्यता के विशेषज्ञ प्राध्यापक हिल प्रेचट द्वारा बेबीलोनिया—साम्राज्य की एक मणि पर खुदे अक्षरों को सहसा पूर्वजन्म की स्मृति से पढ़ लेने का वर्णन किया है। इन प्राध्यापक को उस लिपि व भाषा का ज्ञान नहीं था। अकस्मात् दिवास्वप्न की तरह उनके दिमाग में वह अर्थ कौंध गया, जो बाद में उस लिपि के विशेषज्ञों द्वारा सही बताया गया। इससे यह अनुमान किया गया कि ये प्राध्यापक पूर्व जन्म में असीरियाई नागरिक थे और उसका संस्कार इतना गहरा था कि इस बार अमरीका में जन्म लेने पर भी वे असीरियाई—सभ्यता के ही अध्ययन की ओर अधिक प्रवृत्त हुए।

इस प्रकार यद्यपि उनके पिछले जन्म की स्थिति न इस जीवन में उनके विषय विशेष के विद्वान प्राध्यापक बनने के साधन जुटाये, तो भी यह दक्षता जन्मजात नहीं थी। जन्म से तो उस दिशा में प्रवृत्ति-विशेष ही साथ थी। अंतरंग में उमड़ रही उस प्रवृत्ति

ने ही सफलता का पथ-प्रशस्त किया। वस्तुतः प्रवृत्तियाँ और संस्कार ही जन्म-जन्मांतर के साथी-सहयोगी होते हैं।

शास्त्र कहता है—"अणोरणीयान् महतोमहीयान" अर्थात यह आत्मा छोटे से भी छोटा और इतना बिराट है कि उसमें समग्र सृष्टि खप जाती है। अणु के अंदर समाविष्ट आत्मा की सत्यता का प्रमाण यही है कि जब वह पुनः किसी प्राणधारी के दृश्य रूप में विकसित होती है तो अपने सूक्ष्म (नाभिक शरीर) के ज्ञान की दिशा में बढ़ने लगती है। इसी बात को गीता में भगवान कृष्ण ने इस प्रकार कहा है—

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन।।

अर्थात—आत्मा पहले शरीर में संग्रह किये हुए बुद्धि संयोग को अर्थात समत्व बुद्धि-योग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाती है और तब हे अर्जुन ! उस संस्कार के प्रभाव से वह फिर परमात्मा की प्राप्ति रूप सिद्धि के लिए पहले से भी बढ़कर प्रयत्न करती है।

२०० वर्ष पूर्व जर्मनी में हानरिस हानेन्केन का जन्म हुआ। यह बालक तीन वर्ष का था, तभी उसने जोड़, बाकी, गुणा, भाग लगाना और हजारों लैटिन मुहावरे सीख लिये थे। इसी अवस्था से उसने फ्रेंच भाषा और भूगोल का अच्छा ज्ञान प्राप्त करना प्रारंभ कर दिया था। इस विलक्षण प्रतिभा का कारण वैज्ञानिक नहीं जान पाये।

इसी तरह साइबरनेटिक्स के रचनाकार वीनर ने पाँच वर्ष की आयु में ही विज्ञान में रुचि लेनी प्रारंभ कर दी थी, वह अठारह वर्ष के लड़कों के साथ विज्ञान पढ़ता था। चौदह वर्ष की अत्यल्प आयु में वीनर ने विज्ञान की उपाधि प्राप्त कर ली। गेटे नौ वर्ष की आयु में कविताएँ लिखने लगा था, जो आज बी० ए० और एम० ए० की कक्षाओं में पढ़ाई जाती हैं। बायरन, स्काट और

डार्विन ऐसे ही विलक्षण बौद्धिक क्षमता वाले बच्चे थे। पास्कल ने पंद्रह वर्ष की आयु में ही विज्ञान संबंधी रचना प्रकाशित कर दी थी, जिसमें उसने सौ से भी अधिक नये प्रमेय सिद्ध कर दिये।

ऐसी विलक्षण और आध्यात्मिक प्रतिभा संपन्न बच्चों के उदाहरण भारतवर्ष में सर्वाधिक विद्यमान हैं। उन सब में विलक्षण चित्रकूट से दस मील दूर जलालपुर नामक ग्राम में एक धर्म-प्राण ब्राह्मण परिवार में जन्मी बालिका है। उसका नाम है, सरोजबाला। पिता का नाम पं० श्यामसुंदर जी; इन दिनों सूरत में कार्य करते हैं। इस बालिका के दो व्यक्तित्व हैं—एक तो साधारण बालिका और दूसरा अत्यंत विद्वान और प्रतिभा संपन्न बालिका का। जब तक वह घर में रहती, वह बालकों की-सी चपलता, उछल-कूद, आमोद-प्रमोद किंतु जैसे ही वह सभा-मंच पर पहुँचती है, गीता, रामायण, महाभारत, वेदांत, मनुस्मृति, योग और भक्ति के समन्वय से ऐसे धारा-प्रवाह प्रवचन करती है कि सुनने वाले मंत्र-मुग्ध हो जाते हैं। सरोजबाला तीन वर्ष की थी, तभी से अपने को राजस्थान के एक ब्राह्मण परिवार के मृतक के रूप में घोषित करने लगी थी। १९६२ में स्व० डॉ० राजेंद्रप्रसाद (उस समय के राष्ट्रपति) के समक्ष कानपुर में उसने प्रवचन किया था, जिसको सुनकर वे बहुत प्रभावित हुए थे। अगले वर्ष से ही वह नियमित रूप से सार्वजनिक समारोहों में प्रवचन करने लगी थी। उसके असीम ज्ञान, शुद्ध, उच्चारण, प्रतिभापूर्ण शैली और भावभंगिमाओं को देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि यह ज्ञान इसी जीवन का विकास है।

प्रतिभाएँ ! पूर्वजन्म का संचित ज्ञान

संसार में ऐसी विलक्षण प्रतिभाएँ समय-समय पर उत्पन्न होती रहती हैं, जिनकी बौद्धिक असाधारणता को देखकर अवाक् रह जाना पड़ता है। शरीर विकास की तरह बौद्धिक विकास का भी एक क्रम है। समय और अवधि के अनुरूप—साधन-सुविधाओं के सहारे कितने ही मनुष्य अपनी प्रतिभा को निखारते, बढ़ाते देखे गये

हैं। पुरुषार्थ और परिस्थितियों के सहारे उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँचते भी अनेकों को देखा जाता है, पर इस स्वाभाविक प्रगति-प्रक्रिया का उल्लंघन करके कई बार ऐसी प्रतिभाएँ सामने आती हैं, जिनके विकास क्रम का कोई बुद्धिगम्य कारण दिखाई नहीं पड़ता। ऐसी विलक्षण प्रतिभाओं का कारण ढूँढ़ने के लिए हमें पूर्व संचित ज्ञान-संपदा का प्रतिफल मानने के अतिरिक्त और कोई समाधान मिल ही नहीं सकता।

विख्यात फ्रांसीसी बालक 'जॉन लुई कार्दियेक' जब तीन मास का था, तभी अंग्रेजी वर्णमाला का उच्चारण कर लेता था। तीन वर्ष का होते-होते वह अच्छी लैटिन पढ़ने और बोलने लगा। पाँच वर्ष की आयु में पहुँचने तक उसने फ्रेंच, हिब्रू और ग्रीक भी अच्छी तरह सीख लीं1 छह वर्ष की आयु में उसने इतिहास, भूगोल और गणित पर भी आश्चर्यजनक अधिकार प्राप्त कर लिया। सातवें वर्ष में वह संसार छोड़कर चला गया।

विलियम जेम्स सिदिस ने सारे अमेरिका को आश्चर्यचकित कर दिया। दो वर्ष की आयु में वह धड़ल्ले की अंग्रेजी बोलता, पढ़ता और लिखता था। आठ वर्ष की आयु में छह विदेशी भाषाओं का ज्ञाता था जिनमें ग्रीक और रूसी भाषाएँ भी सम्मिलित थीं, जिनका उस देश में प्रचलन नहीं था। ग्यारह वर्ष की आयु में उसने उस देश के मूर्धन्य विद्वानों की सभा में चौथे 'आयाम' की संभावना पर एक विलक्षण व्याख्यान दिया उस समय तक तीसरे आयाम की बात ही अंतिम समझी जाती थी।

सिदिस की यह विलक्षणता किशोरावस्था आने पर न जाने कहाँ गायब हो गई। वह अति सामान्य बुद्धि का व्यक्ति रह गया।

इंग्लैंड के डेवोन स्थान में एक पत्थर तोड़ने वाले श्रमिक का दो वर्षीय पुत्र जार्ज, गणित में अपनी अद्‌भुत प्रतिभा प्रदर्शित करने लगा। चार वर्ष की आयु में उसने गणित के अत्यंत जटिल प्रश्नों का दो मिनट में मौखिक उत्तर देना आरंभ कर दिया जिन्हें कागज,

कलम की सहायता से गणित के निष्णात, आधा घंटे से कम में किसी भी प्रकार नहीं दे सकते थे। इसकी प्रतिभा भी दस वर्ष की आयु में समाप्त हो गई। फिर वह सामान्य लड़कों की तरह पढ़कर कठिनाई से सिविल इंजीनियर बन सका।

फिल्मी दुनिया में तहलका मचाने वाला बाल अभिनेता विलियम हेनरी वेट्टी बाल्यकाल से सही अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देने लगा। उसके अभिनय ने सारे यूरोप का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। ११ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते वह फिल्म दर्शकों का सुपरिचित प्रिय-पात्र बन गया। ऐसा ही एक दूसरा बालक था लंदन का कवेंट गार्डन, उसका अभिनय देखने के लिए आकुल भीड़ को हटाने के लिए एक बार तो सेना बुलानी पड़ी थी। उसे इतना अधिक पारिश्रमिक मिलता था, जितना पाने का अन्य किसी कलाकार को सौभाग्य न मिला। एक बार तो 'हाउस ऑफ कामन्स' का अधिवेशन इसलिए स्थगित करना पड़ा कि उस दिन कवेंट गार्डन द्वारा हेमलेट का अभिनय किया जाना था और सदस्यगण उसे देखने के लिए आतुर थे।

जर्मन की बाल प्रतिभा का कीर्तिमान स्थापित करने वालों में जॉन फिलिफ वैरटियम को कभी भुलाया न जा सकेगा। उसने दो वर्ष की आयु में ही पढ़ना लिखना सीख लिया। छह वर्ष की आयु में वह फ्रेंच और लैटिन भी धारा प्रवाह रूप से बोलता था। सात वर्ष की आयु में उसने बाइबिल का ग्रीक भाषा में अनुवाद करना आरंभ कर दिया। सात वर्ष की आयु में ही उसने अपने इतिहास, भूगोल और गणित संबंधी ज्ञान से तत्कालीन अध्यापकों को अवाक बना दिया। सातवें वर्ष में ही उसे बर्लिन की रॉयल एकैडैमी का सदस्य चुना गया तथा डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि से सम्मानित किया गया। वह भी अधिक दिन नहीं जिया। किशोरावस्था में प्रवेश करते-करते वह इस संसार से बिदा हो गया।

अत्यंत छोटी आयु में विलक्षणता का परिचय देने में समस्त विश्व इतिहास को पीछे छोड़ देने वालों में लुवेक जर्मनी में उत्पन्न हुआ बालक फ्रेडरिक हीनकेन था। वह सन् १७२१ में जन्मा। जन्मने के कुछ घंटे बाद ही वह बातचीत करने लगा। दो वर्ष की आयु में बाइबिल के संबंध में पूछी गई किसी भी बात का विस्तारपूर्वक उत्तर देता था और बताता था कि वह प्रकरण किस अध्याय के किस मंत्र में है। इतिहास और भूगोल में उसका ज्ञान अनुपम था। डेनमार्क के राजा ने उसे राजमहल में बुलाकर सम्मानित किया। तीन वर्ष की आयु में उसने भविष्यवाणी की कि अब मुझे एक वर्ष ही और जीना है। उसका कथन अक्षरशः सही उतरा। चार वर्ष की आयु में वह इस संसार से विदा हो गया।

जो लोग पुनर्जन्म का अस्तित्व नहीं मानते; मनुष्य को एक चलता-फिरता पौधा भर मानते हैं। शरीर के साथ चेतना का उद्‌भव और मरण के साथ ही उसका अंत मानते हैं, वे इन असमय उदय हुई प्रतिभाओं की विलक्षणता का समाधान नहीं ढूँढ़ पायेंगे। वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षी सभी अपने प्रगति क्रम से बढ़ते हैं, उनकी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विशेषताएँ समयानुसार उत्पन्न होती हैं। फिर मनुष्य के असमय में ही इतना प्रतिभा संपन्न होने का और कोई कारण नहीं रह जाता कि उसने पूर्व जन्म में उन विशेषताओं का संचय किया हो और वे इस जन्म में जीव चेतना के साथ ही जुड़ी चली आई हों।

लार्ड मैकाले १९वीं शताब्दी के विश्व-विख्यात ब्रिटिश इतिहास लेखक ने इंग्लैंड का इतिहास आठ जिल्दों में लिखा। उसके लिए उन्होंने दूसरी पुस्तक उठाकर नहीं देखी। सैकड़ों घटनाओं की तिथियों और घटना से संबंधित व्यक्तियों के नाम उन्हें जबानी याद थे। यही नहीं स्थानों के परिचय, दूसरे विषय और अब तक जितने भी व्यक्ति उनके जीवन में उनके संपर्क में आ चुके थे, उन सब

के नाम उन्हें बाकायदा कंठस्थ थे। लोग उन्हें चलता-फिरता पुस्तकालय कहते थे।

पोर्सन ग्रीक भाषा का अद्वितीय पंडित था, उसने ग्रीक भाषा की सभी पुस्तकें और शेक्सपियर के नाटक मुख जबानी याद कर लिए थे। ब्रिटिश संग्रहालय के सहायक अधीक्षक रिचर्ड गार्नेट बारह वर्ष तक एक संग्रहालय के मुद्रित पुस्तक विभाग के अध्यक्ष थे, इस संग्रहालय में पुस्तकों की हजारों अलमारियाँ और उनमें करोड़ों की संख्या में पुस्तकें थीं। श्री गार्नेट अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे न केवल प्रत्येक पुस्तक का ठिकाना बता देते थे, वरन् पुस्तक की भीतरी जानकारी भी दे देते थे।

पास्कल १५ वर्ष की आयु में एक प्रामाणिक विज्ञान ग्रंथ लिखकर प्रकाशित करा चुका था। गेटे ने ६ वर्ष की आयु में यूनानी, लैटिन और जर्मन भाषाओं में कविताएँ लिखना आरंभ कर दिया था।

लिथूयानिया निवासी रैवी एलिजा के संबंध में कहा जाता है कि उसे विचित्र मानसिक शक्ति प्राप्त थी; पर उस पर उसका नियंत्रण न होने के कारण वह शक्ति भी जीवन में कुछ काम न आई। उसने अपने जीवन में दो हजार से अधिक पुस्तकों को एक बार पढ़कर याद कर लिया था। कोई भी पुस्तक लेकर किसी भी पन्ने को खोलकर पूछने पर वह उसके एक-एक अक्षर को दोहरा देता था। उसका मस्तिष्क सदैव क्रियाशील रहता था इसलिये पुस्तकालय के बाद भी उसे अपने हाथ में पुस्तक रखनी पड़ती थी, दूसरे कामों से चित्त हटते ही वह पुस्तकें पढ़ने लग जाता था।

पिल्सवरी अमेरिका के हैरी नेल्सन को भी ऐसी विलक्षण मानसिक शक्ति प्राप्त थी। उसे शतरंज का जादूगर कहा जाता था। वह एक साथ बीस शतरंज के खिलाड़ियों की चाल को याद रख सकता था। बीस-बीस खिलाड़ियों से खेलते समय कई बार

उसे मानसिक थकावट होने लगती थी, उस थकावट को उतारने के लिए वह ताश भी खेलने लगता था।

जर्मनी के राजा की एक लाइब्रेरी प्रसा में थी। इसके लाइब्रेरियन मैथुरिन बेसिरे की आवाज संबंधी याददाश्त अद्भुत थी। एक बार उसकी परीक्षा के लिए बारह देशों के राजदूत पहुँचे और उन्होंने अपनी-अपनी भाषा में बारह वाक्य कहे। जब वे चुप हो गये तो बेसिरे ने बारहों भाषाओं के बारहों वाक्य ज्यों के त्यों दोहरा दिये। वह एक बार में ही कई व्यक्तियों की आवाज सुनता रहता था और आश्चर्य यह था कि सब की बात उसे अक्षरशः याद होती जाती थी। ऐसी विलक्षण प्रतिभा फ्रांस के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ लिआन गैंबाटा और रिचार्ड पोरसन नामक ग्रीक पंडित को भी उपलब्ध थी।

आत्मा के गुण हैं सूक्ष्मता, इंद्रिय अधिष्ठाता, अणु रूप, चेतनता, अजर और अमर, इन गुणों की पुष्टि करने वाली और जीवात्मा के अनेक योनि शरीरों में आवागमन की पुष्टि करने वाली महत्त्वपूर्ण घटना—'ह्यूमन परसनैलिटी भाग १' में इंग्लैंड के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ० मायर्स ने उद्धृत किया है। १८ वर्षीया अमरीकन लड़की "एनो विन्सर" के मस्तिष्क में विक्षिप्तता आ गई उस समय वह कई बार तो अपने आपको क्वेकर संप्रदाय का सदस्य बनाती और उस समय जो भाषण देती वे ठीक क्वेकर दर्शन के भाषण होते। उसने अपने आपको एक बार इंग्लैंड की रानी ऐन बताया और उस समय जो बातें कहीं पता लगाने पर मालूम हुआ कि वे सब सच थीं।

यह निश्चेष्ट अवस्था में आँखें बंद करके कोई भी पुस्तक पढ़ सकती थी। बहुत समय तक उस पर परीक्षण करने वाले डॉ० "आयरा बैरोज" ने इस अवस्था में उसे अँधेरे कमरे में एक सुई व धागा दिया और उस सुई में धागा पिरोने के लिए कहा तो उसने बड़ी आसानी से धागा पिरोकर यह सिद्ध कर दिया कि आत्मा

स्वयं प्रकाश पूर्ण है, उसे देखने के लिए आँखें आवश्यक नहीं। आँख, कान, नाक आदि सब उसकी अतींद्रिय शक्तियाँ हैं। वह दूसरे कमरे में रखी घड़ी में क्या बजा है, यह बताकर सिद्ध करती थी कि आत्मा के लिए करोड़ों मील दूर तक देख सकने में भी कोई बाधा नहीं। वह उल्टी किताब पढ़ लेती थी और सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि वह सिर के ऊपर पुस्तक खोलकर जहाँ हिंदू चोटी रखते हैं उस स्थान से पुस्तक पढ़ देती थी मानो चोटी का स्थान आँख रही हो।

यह लड़की सिर के बल एक हाथ के बल पर खड़ी हो जाती, कभी अपने को कुत्ता कहती और इस तरह भौंकने लगती कि पड़ौसी कुत्ते के भ्रम में पड़कर स्वयं भी भौंकने लगते। उस स्थिति में वह पानी नहीं पीती, ठीक कुत्तों की तरह ही जीभ से चाटती। उसने "हेस्टी पुडिंग" पुस्तक कभी भी पढ़ी नहीं थी तो भी उसके अध्याय के अध्याय और वह भी सोती हुई अवस्था में अपने दाहिने हाथ से लिख देती। लातीनी और फ्रांसीसी भाषाएँ कहीं उसने भी पढ़ी नहीं थीं, पर वह उन्हें लिख भी लेती और बोल भी लेती थीं।

संस्कार और अमुक्त वासना

पकाये मांस की पहली कटोरी जैसे ही बच्चे के सामने रखी गई, उसने भोजन करने का वह स्थान ही छोड़ दिया। फिर माँ के लाख प्रयत्न करने पर भी बच्चे ने उस दिन भोजन नहीं किया। उसने दृढ़तापूर्वक बताया—मांस वैसे ही घृणित खाद्य है पर वह जिस तरह जीवों का उत्पीड़न करके निकाला जाता है, उस कारण तो किसी भी दृष्टि से स्पृश्य नहीं रह जाता। उससे दुर्गुण बढ़ते हैं। मेरे लिए दूध और फल ही काफी हैं। फिर मेरे आगे मांस लाया गया तो मैं तुम लोगों के साथ नहीं रहूँगा।

अमेरिका जहाँ छोटी आयु से ही बच्चों को मांस खाना होता है, वहाँ बिना किसी पूर्व शिक्षा और ज्ञान के बच्चे का मांस के

दुर्गुण के प्रति यह व्याख्यान आश्चर्यजनक ही था। माँ ने यह बात लड़के के पिता से भी कही। पर पिता ठहरे वैज्ञानिक—सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक। उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। सोचा लड़के जिद्दी प्रकृति के होते हैं, कोई बात हो गई होगी। बच्चा अपने आप पारिवारिक साँचे में ढल जायेगा। इस आत्म आश्वासन के साथ ही वे अपने काम में जुट गये।

जिस घटना-क्रम का विकास इन पंक्तियों में हो रहा है, वह कोई कहानी नहीं वरन् एक ऐसी घटना है, जिसने अमेरिका के लब्ध-प्रतिष्ठित जीव शास्त्री डॉ० ह्यूमवॉन एरिच जैसे वैज्ञानिक को भी चक्कर में डाल दिया। प्रथम अवसर था, जब उन्हें यह विश्वास करना पड़ा कि पुनर्जन्म सिद्धांत कोरी कल्पना नहीं। डॉ० ह्यूमवॉन एरिच के संस्कार कोषों (जीन्स) के अध्ययन में और भी प्रगति हुई होती, पर एक अप्रत्याशित घटना ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। अब तक की शोध के आधार पर उनका विश्वास था कि शरीर रचना की तरह गुण और संस्कार भी आनुवांशिक होते हैं अर्थात् उनमें कोई अतिवाहिकता नहीं होती, ये भी जीन्स के द्वारा माता-पिता अथवा ऊपर की ही किसी पीढ़ी से आये हुए होते हैं।

लेकिन यहाँ जो हुआ उसने तो इस सिद्धांत को ही काटकर रख दिया। यही लड़का जिसने एक दिन मांस को घृणित और पशु-प्रवृत्ति कहकर ठुकरा दिया था, आज पिता ह्यूम के सामने एक विचित्र भाषा में भाषण करने लगा। पहले तो पिता ने समझा कि लड़का अनर्गल प्रलाप कर रहा है। पर जब लड़का कई दिन तक उसी प्रकार की टेढ़ी भाषा में बोलता रहा तो उन्होंने भाषाविदों की सहायता ली। एक भाषाविद् ने बताया कि लड़का शुद्ध संस्कृत में बोलता है। लड़के द्वारा बोले गये वाक्यांशों का टेप-रिकार्ड कराकर उनका भाषांतर कराया गया तो पता चला कि लड़के ने जो कुछ कहा वह अनर्गल प्रलाप न होकर प्रवाहमान भावाभिव्यक्ति थी। ऐसी अभिव्यंजना जो किसी बहुत ही शिक्षित और समझदार द्वारा

की गई हो। ह्यूम एक बार तो चक्कर खा गये, बच्चे में यह प्रतिभा कहाँ से आ गई, यह विचार क्षमता कहाँ से उत्पन्न हो गई ?

उन्होंने अपनी पत्नी और पत्नी के सब संबंधियों से पत्र डाल कर पूछा, कोई भी ऐसा न निकला जो संस्कृत भाषा जानता रहा हो। जिन कई पीढ़ियों तक उन्होंने पता लगाया, संस्कृत तो क्या हिंदी जानने वाला भी कोई नहीं हुआ था। ह्यूम स्वयं इटैलियन थे। उनकी धर्मपत्नी भी इटैलियन थीं, आजीविका की दृष्टि से वे अमेरिका में आकर बस गये थे। संस्कृत जो उनके वंशजों में कोई जानता ही नहीं था, फिर इस बालक में यह संस्कार कहाँ से आ गये ? क्या सचमुच पुनर्जन्म होता है। क्या सचमुच चेतना का कोई स्वतंत्र अस्तित्व भी है, जो मृत्यु के बाद भी अमर रहता हो इस तरह के अनेक प्रश्नों ने उनके मस्तिष्क में तूफान खड़ा कर दिया।

समाधान उनके लड़के ने कर दिया। उसने बताया "मैं पूर्व जन्म का एक भारतीय योगी हूँ। मेरा संबंध 'नाथ' नामक एक संप्रदाय से था, जो उत्तरीय पर्वतीय अंचल में पाया जाता है।" अपने निवास के बारे में बच्चे ने बताया—"मैं काँगड़ा के समीप कुटी बनाकर एकांत साधना किया करता था।"

योग साधना करते हुए भी मैं इच्छाओं के प्रवाह में बहता रहता। कभी भावनाएँ निष्काम हो जातीं तो भक्ति का आनंद मिलता पर दूसरे ही क्षण धूप-छाँह की तरह परिस्थिति बदलती और कोई इच्छा आ खड़ी होती। एक दिन की बात है, दो अमेरिकन यात्री उस पहाड़ी पर चढ़ते हुए मेरी कुटी के पास तक आ जाये, पूछने पर उन्होंने अमेरिका की रंगीनी के समाचार बताये। मैं बड़ा प्रभावित हुआ। मुझे लगा वहाँ जीवित स्वर्ग है। एकाएक इच्छा हुई कि अमेरिका जाऊँ और वहाँ का आनंद लूँ। मेरी यह इच्छा मुझे बलात् अमेरिका के रंगीन जीवन की ओर खींचती रही। जब मेरी मृत्यु हुई, तब भी यह मन में इच्छा बनी रही।

डॉ० ह्यूम अपने पुत्र की बातें सुनकर स्तब्ध और अवाक रह गये। पर वे इतनी शीघ्र इन बातों पर विश्वास करने वाले न थे। लड़के के बताये काँगड़ा, नाथ संप्रदाय, पहाड़ियों के नाम, उस क्षेत्र के रीति-रिवाज आदि के संबंध में उन्होंने विस्तृत खोज की तो उन्हें अक्षरशः सत्य पाया। लड़का कभी भारत गया नहीं। पुस्तकों में उसने भारतवर्ष का नाम भी नहीं पढ़ा, रीति रिवाजों का तो कहना ही क्या, फिर यह बातें उसके मस्तिष्क में कहाँ से आईं ? वे यह कुछ न समझ सके।

बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक, भाषाविद् आये। सबने लड़के की बातचीत टेप की, अलग-अलग अध्ययन किया पर निष्कर्ष निकालते समय वे सब के सब माथे पर हाथ धरे सिर खुजलाते रह गये।

एक दिन लड़के ने कहा—"पिता जी ! अमेरिका दर्शन की मेरी आकांक्षा पूर्ण हो गई है। अब मुझे मेरी मातृभूमि पहुँचा दीजिये। मैं अमेरिका में नहीं रह सकता।"

किसी तरह माँ उसे लेकर भारत जाने को तैयार हुई। विदेश यात्रा के लिए उन्होंने आवेदन-पत्र भी भर दिया किंतु एक दिन प्रातःकाल उठकर जब वे अपने पुत्र के निजी कक्ष में गईं तो देखा कि मौत-मुद्रा में उस लड़के का पार्थिव शरीर पद्मासन लगाये बैठा है। उसके प्राण तो कहीं और जा चुके हैं।

जबलपुर में १८ मील दूर कालादेवही के शिव मंदिर के पुजारी श्री कन्हैयालाल जी चौबे के घर एक बालक ने जन्म लिया। नाम रखा गया दामोदर प्रसाद। बालक ६ वर्ष का हुआ तभी से वह रामायण, गीता, वाल्मीकि रामायण, भोज प्रबंध, भर्तृहरिशतक आदि आर्ष ग्रंथों के श्लोक और उनके अर्थ उच्चारण करने लगा। बालक को विद्यालय में प्रवेश कराया गया तो उसकी इस विलक्षण योग्यता से अध्यापक बहुत प्रभावित हुये। उन्होंने पूछा—उसे यह ज्ञान किस तरह प्राप्त हुआ ? इसका वह कुछ उत्तर नहीं दे पाया, पर लड़का

हमेशा हरिद्वार जाकर पढ़ने का आग्रह करता और कहता कि उसने वहाँ से पढ़ाई छोड़ी थी।

२८ वर्ष पूर्व प्रकाशित पुस्तक पूर्व-जन्म स्मृति में एक दिलचस्प घटना थी कैकई नंदन सहाय की छपी है और बताया है कि उनके चचेरे भाई श्री नंदन सहाय बी० ए० को हैजा हो गया। उस समय उनकी आयु १६ वर्ष की थी। मृत्यु के समय उनकी पत्नी को २ मास का गर्भ था। पति की मृत्यु के बाद से ही पत्नी को खराब-खराब स्वप्न आने शुरू हुए। एक दिन उन्होंने स्वप्न में अपने मृत पति को देखा। वह कह रहे थे—मैं तुम्हारे ही पास रहूँगा (मृत्यु के समय वे पत्नी वियोग से बहुत दुःखी थे) तुम्हारे ही पेट से जन्म लूँगा लेकिन तुम्हारा दूध नहीं पिऊँगा। मेरे लिए दूध का अलग से प्रबंध रखना। मेरी बात की सत्यता यह होगी कि जन्म से ही मेरे सिर पर चोट का निशान होगा।

कुछ दिन बाद पुत्र जन्मा तो घर वाले कौतूहल में रह गये कि वह लड़का हूबहू अपने पिता जैसा ही था। हमशक्ल होना आनुवांशिक कारणों से हो सकता है किंतु सिर में चोट का निशान ? इस बात का प्रतीक था कि बच्चा निरा आनुवांशिक ही न होकर स्वप्न का सत्य भी था उसमें अपनी चेतना लौटी थी। बच्चा छोटे से ही पत्नी का दूध नहीं पीता था अतएव उसके लिए एक धाय रखी गई। वही उसे दूध पिलाती थी।

लड़का किसी और स्त्री के स्तनों से दूध पी लेता था, किंतु कोई उसकी स्त्री (वर्तमान में माँ) के स्तनों का दूध निकालकर चम्मच से भी पिलाता तो वह नहीं पीता था, मुँह से उगल देता था। बच्चे की वासना पत्नी में थी सो उसने उसी के गर्भ से जन्म लेना स्वीकारा। पर उसे अलग रहना नहीं।

अपनी पुस्तक "रिइन्कार्नेशन" में विलियम वाकर एटकेन्सन ने बहुत सी ऐसी बहुत सी घटनाएँ दी हैं जो पुनर्जन्म के साथ-साथ जीव की इच्छा-शक्ति की प्रबलता को भी प्रमाणित करती हैं।

जींद (हरियाणा) का कालेज। एक विद्यार्थी के साथ उसकी छोटी बहिन भी कॉलेज चली आई। एक अध्यापक ने प्रयोगशाला में खड़ी उस बालिका से पूछा—बेटी यह शीशी में क्या रखा है जानती है ? इसे छूना मत, नहीं तो जल जायेगी। अध्यापक ने कोई परीक्षा लेने के लिए नहीं पूछा था उसने तो साधारण हिदायत भर दी थी, किंतु लड़की बोली हाँ-हाँ सर यह "कन्संट्रेटेड नाइट्रिक एसिड" है, मैं इसे नहीं छूऊँगी उसने और भी शीशियों में रखे हुए घोलों [सोलूशन्स] को सही-सही बताकर अध्यापकों और छात्रों को विस्मय में डाल दिया—इस आयु के बच्चे तो अच्छी तरह बोल भी नहीं सकते, फिर इस बालिका में अंग्रेजी और विज्ञान का यह असाधारण ज्ञान कहाँ से आया ?

जो बात और अधिक विस्मय में डालती है वह यह है कि उक्त बालिका बिना किसी शिक्षा के पुस्तकें पढ़ लेती है, उसे हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी का एक एफ० ए० के विद्यार्थी में जितना ज्ञान है यह ज्ञान कहाँ से उपलब्ध हुआ ? क्या ऐसी कोई परंपरा भी है, जिसमें बच्चों की जन्म-जात प्रतिभा को विकसित किया जाता हो इन प्रश्नों पर विचार करने बैठते हैं तो उस सिद्धांत की ही पुष्टि होती है, जिसमें यह बताया जाता है कि मृत्यु के बाद ही जीवन का अंत नहीं हो जाता है।

जींद की यह घटना तो स्पष्टतया भारतीय दर्शन की उस मान्यता का ही उल्लेख है। ११ वर्षीया बालिका के बारे में यह माना जा सकता है कि बौद्धिक प्रतिभा के कारण उसने अन्य समवयस्कों की अपेक्षा थोड़ा अधिक ज्ञान अर्जित कर लिया होगा। पर जो वस्तु उसने कभी पढ़ी भी नहीं, वह इस जन्म का विकास कैसे हो सकता है, दूसरे उसे धर्म के गूढ़ रहस्यों का कोई पता भी नहीं फिर भी वह बताती है कि मैं अर्विन अस्पताल दिल्ली के एक डॉक्टर की पुत्री थी। हम अग्रवाल जाति के थे। मेरे पास जीप और

कार थी। मेरा नाम सुमन था। मुझे खूब अच्छे-अच्छे मीठे पकवान आदि खाने को मिलते थे मैंने इंटर तक पढ़ाई की थी।

पिछले जन्म के कई संस्कार इस जीवन में अपने आप परिलक्षित हो रहे हैं—(१) एक तो यही कि उसने बिना पढ़े अंग्रेजी आदि का ज्ञान पाया। (२) उसका डील-डौल सामान्य गति से अधिक तेजी से बढ़ रहा है। उसकी वर्तमान माँ यह बताती है कि बालिका को कोई अतिरिक्त खुराक नहीं दी जाती, तो भी उसका शरीर असाधारण रूप से बढ़ रहा है। डॉक्टर भी उसका कोई कारण समझ नहीं पाते। (३) अब चूँकि वह निर्धन घर में है इसलिए उसे अच्छा खाना कभी-कभी मिलता है। वह उसका अधिकांश अपनी बहिनों-भाइयों को दे देती है और कहती है कि यह वस्तुएँ मैंने भरपेट खाई हैं इसलिये मेरी उनमें कोई बहुत रुचि नहीं है। (४) दिल्ली, अमृतसर, डलहौजी, शिमला आदि स्थानों के वह कई रोचक वर्णन सुनाती है, जिसे उसने देखा भी नहीं। यह चारों बातें पूर्व जन्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत को ही पुष्ट करती हैं।

इस घटना का सबसे आश्चर्यजनक पहलू तब सामने आया जब उसकी माँ के पेट से एक और कन्या जन्मी और उसके जन्म लेते ही बड़ी बहिन फूट-फूटकर रोने लगी—उसने कहा अरी ! पूनम तू जीजाजी को और दोनों बच्चों को किसके सहारे छोड़ आई ? लोग कहते थे यह क्या पागलपन है, किंतु इस बालिका ने बताया कि यह छोटी बहिन पहले जन्म में मेरी बहिन थी। इसका नाम पूनम था। इसकी शादी भिवानी के एक अध्यापक के साथ हुई थी। पूनम का रंग कुछ साँवला था इसलिए जीजाजी उसे चिढ़ाते रहते थे। पूनम ने उससे दुःखी होकर एक दिन आत्म-हत्या कर ली और इस तरह पूर्व जन्म की दो सगी बहिनें फिर इस जन्म में सगी बहिनें हुईं।

आश्चर्य यह है कि आत्मा की सूक्ष्मता के कारण किसी विशिष्ट व्यक्ति की पहचान संभव नहीं है, फिर बालिका ने जन्म

लेते ही अपनी बहिन को कैसे पहचान लिया जबकि इस जन्म में उसका शरीर उसकी मुखाकृति सब कुछ अलग-अलग है। अब यह बालिका भी ४-५ वर्ष की है और जब इस जन्म की बड़ी बहिन किसी को पूर्व जन्म की बातें बताने लगती है, तो छोटी बहिन उसे रोकती है और कहती है अब यह सब बातें करने से क्या लाभ ? उनकी यह गंभीरता यह सोचने को विवश करती है कि क्या सचमुच हमारे मर जाने के बाद भी जीवन बना रहता है ?

बहुत छोटी आयु में असाधारण प्रतिभाओं का होना पुनर्जन्म का प्रामाणिक आधार है। मनुष्य का स्वाभाविक विकास एक साथ जुड़ा है। मस्तिष्क कितना ही तीव्र क्यों न हो उसे क्रमबद्ध प्रशिक्षण की आवश्यकता तो रहेगी ही। यदि बिना किसी प्रशिक्षण अथवा उपयुक्त वातावरण के छोटे बालकों में असाधारण विशेषताएँ देखी जायें तो उसका समाधान भी उनके पूर्वजन्मों के संग्रहीत ज्ञान के ही कारण मानने से हो सकता है।

मरणोत्तर जीवन की मान्यता और संस्कारों का दूरगामी प्रभाव-परिणाम अध्यात्म-दर्शन का एक बड़ा आधार है। चिंतन की शैली, आकांक्षा और दिशा का प्रभाव न केवल इस जीवन में विविध हलचलों की केंद्रीय प्रेरणा के रूप में क्रियाशील रहता है, अपितु अगले जीवन में भी यह प्रभाव बना रहता है। व्यक्तित्व को विकसित एवं परिवर्तित कर सकने की वास्तविक शक्ति इन्हीं संस्कारों की प्रखरता में सन्निहित है। संस्कार किसी ग्रह-नक्षत्र की कृपा से नहीं बनते-बिगड़ते। मनुष्य अपने मनोबल, विवेक और पुरुषार्थ से ही उन्हें निखारता है। अतः सत्संस्कारों को ही जन्म-जन्मांतर तक साथ देने वाले अभिन्न-मित्र समझकर उनकी संख्या और शक्ति बढ़ाने के लिए सदा सजग रहने में ही बुद्धिमानी है। यात्रा का पाथेय और प्रगति के सुनिश्चित आधार सत्कर्म तथा सुसंस्कार ही हैं।

अध्यात्म के सिद्धांत व्यक्तिगत जीवन को अधिक पवित्र एवं शालीन बनाने की भूमिका संपादित करते हैं। उनसे सामाजिक सुव्यवस्था की आधारशिला भी रखी जाती है और सर्वजनीन एवं सुख-शांति का पथ प्रशस्त होता है।

१-शरीर की नश्वरता, २-आत्मा की अमरता, ३-कर्मफल का सुनिश्चित होना तथा परलोक पुनर्जन्म की संभावना यह चार सिद्धांत ऐसे हैं जो किसी न किसी रूप में प्रायः अध्यात्म की सभी शाखाओं में प्रतिपादित किये गये हैं। यों कई धर्मों में पापों के क्षमा हो जाने और मरणोत्तर जीवन की स्थिति में भिन्न मान्यताएँ भी हैं, पर वे लोच-लचक के रूप में ही हैं। इतनी कठोर नहीं कि उनसे उपरोक्त चार सिद्धांत जड़-मूल से ही कट जाते हों। मरणोत्तर जीवन किसी न किसी रूप में बना ही रहता है। कर्म को भले ही नैतिक रूप में न मानकर सांप्रदायिक विश्वासों की परिधि में लपेट लिया गया हो, तो भी यह नहीं कहा गया कि कर्म का कोई फल नहीं मिलता। इस प्रकार छोटे मतभेदों के रहते हुए मूल सिद्धांतों के प्रति प्रायः सहमति ही पाई जाती है।

वर्तमान जीवन में शुभ कर्म करने पर भले ही इसमें जन्म उसका सुखद प्रतिफल मिले पर मरणोत्तर जीवन में उसका मंगलमय परिणाम उपलब्ध हो जायेगा, इस विश्वास के आधार पर लोग त्याग और बलिदान के बड़े-बड़े साहसपूर्ण कदम उठाते हैं। इस जन्म में किये गये पापों के दंड से भले ही इस समय किसी चतुरता से बचाव कर लिया जाये पर आगे चलकर उसका दंड भुगतना ही पड़ेगा, यह सोचकर मनुष्य दुष्कर्म करने से अपने हाथ रोक लेता है और कुमार्ग पर पैर बढ़ाने से डरता, झिझकता है। यदि इस मान्यता को हटा दिया जाये तो तत्काल शुभकर्म का सत्परिणाम न मिलने की स्थिति में कोई उसके लिए उत्साह प्रदर्शित न करेगा। इसी प्रकार पाप दंड से सामाजिक बचाव कर लेने की उपलब्ध तरकीबें ढूँढ़कर फिर कोई अनीति अपनाने पर

मिलने वाले लाभों को छोड़ने की इच्छा न करेगा। ऐसी दशा में व्यक्ति और समाज में अनैतिक अवांछनीय तत्त्वों की बाढ़ आ जायेगी और मर्यादाओं के बाँध टूट जायेंगे। मानसिक नियंत्रण न रहने की स्थिति में भयंकर स्वेच्छाचार फैल जायेगा और उस उच्छृंखलता से समूची मनुष्य जाति का—समस्त संसार का भारी अहित होगा।

यह मान्यता विश्वव्यापी धार्मिक विश्वासों अत्युच्च कोटि के प्रतिभाशालियों तथा तत्त्वद्रष्टाओं द्वारा कहे—बताये एवं लिखे गये, प्रामाणिक ग्रंथों एवं विज्ञान की अधुनातन मान्यताओं के भी सर्वथा विपरीत है। पुनर्जन्म न केवल एक लोककल्याणकारी सिद्धांत है, अपितु वह एक ईश्वरीय-व्यवस्था, अटल नियम एवं सुनिश्चित सुनियोजित प्रक्रिया है। आवश्यकता उस प्रक्रिया को, कर्मफल की अनिवार्यता एवं संस्कारों की महत्ता को समझने तथा जीवन-लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ने के लिए संपूर्ण शक्ति से प्रयास करने की है। मानव-जीवन का हेतु तथा महत्त्व भी यही है।

❑ ❑